श्री अरविंद कर्मधारा

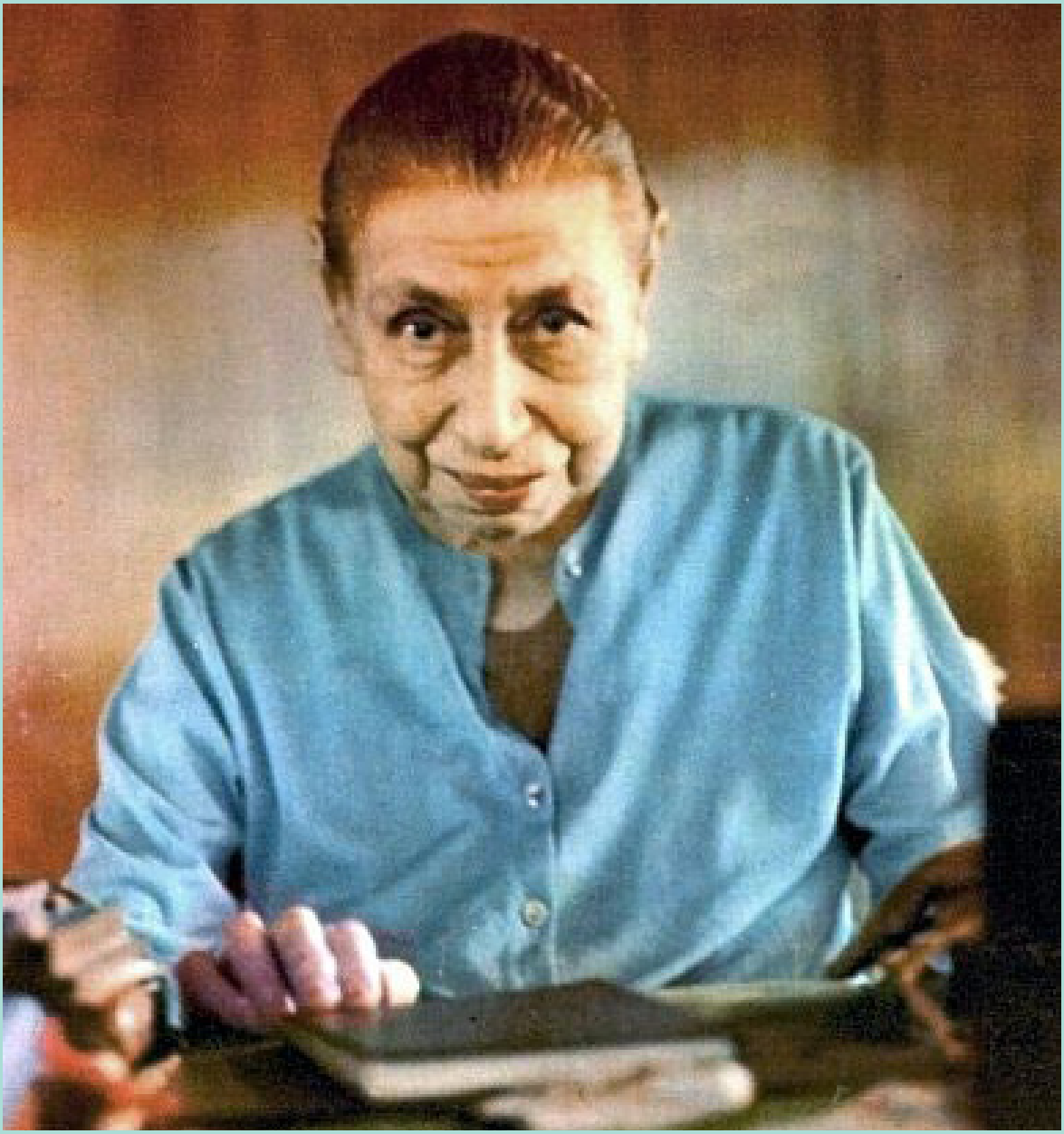

सतत् और निष्कपट अभीप्सा तथा केवल भगवान् की ओर मुड़ने की इच्छा ही चैत्य को सामने लाने का उत्तम साधन है।

24 अप्रैल, 2019 वर्ष-49 अंक-3

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का मुखपत्र

24 अप्रैल, 2019

वर्ष-49 - अंक-3

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर`

सम्पादक

त्रियुगी नारायण

सहसम्पादन

रूपा गुप्ता

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, सुश्री रंगम्मा

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा (नि:शुल्क उपलब्ध) कृपया सब्सक्राइब करें-

sakarmdhara@gmail.com

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा

श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26524810, 26567863

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

शिक्षा एक प्रकटन है।

"...मन को कोई ऐसी चीज़ नहीं सिखायी जा सकती जो प्राणी की खिलती हुई आत्मा में संभाव्य ज्ञान के रूप में छिपी हुई ना हो। इस प्रकार बाहरी मनुष्य जितनी पूर्णता पाने में समर्थ है वह केवल उसके अन्दर स्थित आत्मा की सनातन पूर्णता की अभिव्यक्ति है। हम भगवान को जानते और उनके साथ एक हो जाते है क्योंकि अपने गुह्य स्वरूप में हम पहले से ही वह हैं। हर प्रकार की शिक्षा एक प्रकटन है, सारा संभवन एक उन्मीलन है। रहस्य है आत्म-सिद्धि, आत्म-ज्ञान और प्रगतिशील चेतना साधन और प्रक्रिया हैं।"

श्री अरविन्द

इस अंक में...

1. **प्रार्थना और ध्यान** 4
   श्रीमाँ
2. **सम्पादकीय** 6
3. **श्रीमाँ** 8
   जननी! तेरे दयास्निग्ध चरणों को
   रविन्द्रनाथ ठाकुर
4. **स्थिरता, शांति, समता** 10
   श्री अरविन्द
5. **वे माँ की सच्ची सन्तान थे** 18
   त्रियुगी नारायण
6. **श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली में मेरे पच्चीस वर्ष** 20
   त्रियुगी नारायण
7. **श्रीमाँ के वचन** 24
8. **सावित्री के विषय में माताजी** 26
   (एक संकलन)
9. **अतिथि सत्कार** 31
   अनुवादिका देवी करुणामयी
10. **श्रीमाँ का भारत आगमन** 33
    सुरेन्द्र चन्द्र त्यागी
11. **पुस्तक वितरण** 42
12. **आश्रम कार्यक्रम-24 अप्रैल 2019** 43
13. **आश्रम की कुछ अन्य गतिविधियाँ** 44

तुम्हारी निष्ठा सच्ची और सर्वांगीण हो।

प्रार्थना और ध्यान

श्रीमाँ

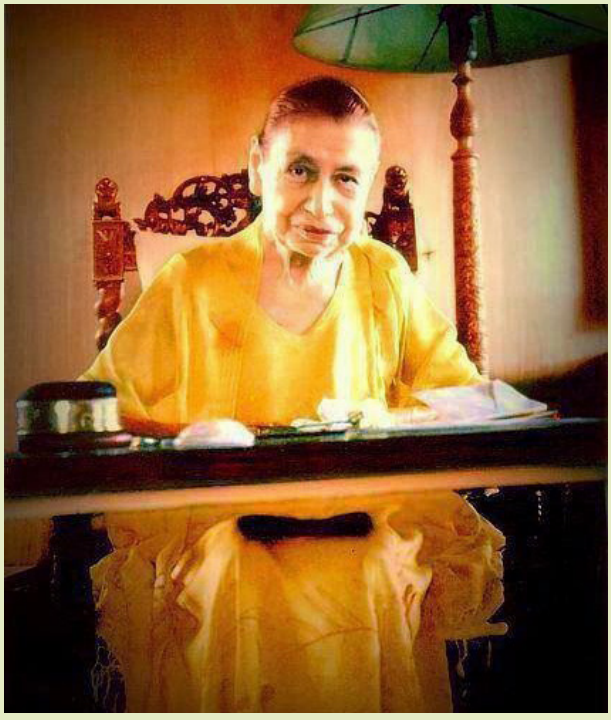

हे प्रभु! हे अचिन्त्य तेजपुञ्ज, वर दे कि तेरा सौन्दर्य पृथ्वी पर फैल जाये, तेरा प्रेम सब हृदयों में प्रज्ज्वलित हो उठे, तेरी शान्ति सब पर छा जाये।

हे प्रभु, मेरे हृदय से एक गहरा, गम्भीर, प्रसन्नतापूर्ण और सूक्ष्म गीत उठता है। पता नहीं कि यह मुझसे उठकर तेरी ओर जा रहा है अथवा तुझसे उठकर मेरी ओर आ रहा है अथवा तू, मैं और समस्त संसार यह अद्भुत गीत बने हुये हैं जिसका मुझे अब ज्ञान हो रहा है.....। निश्चय ही अब ना तू है, ना मैं हूँ और ना कोई अलग संसार है। है केवल एक बृहत् अनन्त तथा उदात्त समस्वरता जिसमें सब कुछ समाविष्ट है और जिसका एक दिन सबको ज्ञान हो जायेगा। यह समस्वरता उस असीम प्रेम की समस्वरता है जो सब दुःख तथा अन्धकार को जीत लेगा।

मैं अब इस प्रेम के नियम, तेरे ही नियम के अनुसार अधिकाधिक सर्वांगीण रूप में जीना चाहती हूँ। इसके प्रति मैं बिना संकोच के अपने-आपको समर्पित करती हूँ और मेरी सत्ता अनिर्वचनीय शान्ति में आनन्द मना रही है।

पवित्र और निष्काम प्रेम, तेरा वह प्रेम जिसे हम अनुभव तथा व्यक्त कर सकते हैं, तेरी खोज में लगे हृदयों को खोजने के लिये एकमात्र कुञ्जी है। जो बौद्धिक मार्ग का अनुसरण करते हैं वे ऐसी धारणा बना सकते हैं जो अत्यन्त उच्च तथा सत्य हो; वे समझ सकते हैं कि सत्य जीवन अथवा वह जीवन जो तेरे संग एक हो चुका है क्या है।

परन्तु उन्हें उसका ज्ञान नहीं; उन्हें इस जीवन का आन्तरिक अनुभव नाममात्र को भी नहीं होता और वे तेरे साथ हर प्रकार के सम्पर्क से अनभिज्ञ होते हैं। जो लोग तुझे बौद्धिक रूप में जानते हैं और क्रियात्मक दृष्टि से अपनी मानसिक रचना में, जिसे वे सबसे अच्छा मानते हैं, बंद हैं, उनका परिवर्तन सबसे अधिक कठिन होता है। उनमें चेतना जागृत करने में बहुत कठिनाई होती है, जो किसी और सद्भाव वाले व्यक्ति में नहीं होती। केवल प्रेम ही यह चमत्कार साधित कर सकता है, क्योंकि प्रेम सब किवाड़ खोल देता है, सब दीवारें भेद डालता है, सब बाधायें पार कर जाता है। तनिक-सा सच्चा प्रेम अच्छे-से-अच्छे उपदेश से कहीं अधिक काम करता है।

हे प्रभु! मेरे अन्दर इसी प्रेम का पवित्र फूल प्रस्फुटित कर दे, जिससे जो भी हमारे समीप आयें उन सबको यह सुगन्धित कर दे और वह सुगन्ध उन्हें पवित्र बना दे। इसी प्रेम में है शान्ति और आनन्द, सारी शक्ति और सम्पूर्ण उपलब्धित का स्त्रोत। यह अचूक वैद्य है, परम सान्त्वना प्रदाता है; यह विजेता है, सर्वोच्च शिक्षक है।

हे प्रभु! मेरे प्रिय स्वामी! तू, जिसकी मैं मौन भाव में पूजा करती हूँ तथा जिसके प्रति मैं पूर्णतया समर्पित हूँ, और जो मेरे जीवन का शासक है, तू मेरे हृदय में अपने पवित्र प्रेम की ज्योति जगा दे, ताकि यह तीव्र ज्वाला बनकर जल उठे और सब अपूर्णताओं को भस्म कर दे; अहंकारी की मृत लकड़ी को तथा अज्ञान के काले कोयले को सुखदायी ताप और चमकते प्रकाश में परिवर्तित कर दे।

हे नाथ! मैं ऐसी भक्ति के साथ, जो एक साथ प्रसन्नतापूर्ण तथा गम्भीर है, तेरे अभिमुख होती हूँ और याचना करती हूँ कि :

तेरा प्रेम प्रकट हो!

तेरा राज्य स्थापित हो!

तेरी शक्ति संसार पर शासन करे!

सम्पादकीय

श्री अरविन्द की आध्यात्मिक सहयोगिनी श्री माँ का भारत में पूर्ण आगमन- 24 अप्रैल- दर्शन दिवस विशेष

भारत के सूदूर दक्षिण में बसे पांडिचेरी में भारत के अध्यात्मिक विभूतियों में शामिल श्री माँ ने 24 अप्रैल 1920 को अपना जीवन पूर्णरूपेण भारत और श्री अरविन्द के अध्यात्मिक कार्य के विस्तार के लिए समर्पित कर दिया था। श्री अरविन्द आश्रम में 24 अप्रैल दर्शन दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। फ्रांस में जन्मी मीरा रिचार्ड उन महिलाओं में शामिल हैं जिन्होंने भारत की आध्यात्मिकता में विदेशी भूमि में जन्म लेने के बावजूद भारत के जनमानस को अपनी ओर खींचा। अखंड भारत के मानचित्र के नीचे बैठीं श्री माँ की तस्वीर सदैव भारत की पुण्यभूमि की अखंडता के स्वप्न को हर भारतीय के ह्रदय में संजोये रखती है। श्री माँ ने भारत माँ को साक्षात दुर्गा बताया और कहा भारत का चैत्य पूर्णतः अखंड है। पेरिस में जन्मीं श्री माँ योग के विभिन्न मार्गों को जानती थीं। एक भारतीय के द्वारा स्वामी विवेकानंद की राजयोग पुस्तिका का आधा अधूरा फ्रेंच अनुवाद मिलने के बाद श्री माँ भारत की ओर आकर्षित हुयीं। श्री माँ से श्री अरविन्द का मिलने का दुर्लभ संजोग श्री माँ के पति पॉल रिचर्ड के द्वारा श्री अरविन्द से 1910 में मिलने के बाद तय हुआ। पॉल रिचर्ड फ्रांस में होने वाले एक चुनाव के लिए पांडिचेरी आये थे। उस समय श्री अरविन्द अपनी क्रन्तिकारी गतिविधियों से दूर हो कर पांडिचेरी में योग साधना कर रहे थे। 1914 में श्री माँ का प्रथम पांडिचेरी आगमन हुआ। अपने स्वप्न में अक्सर आने वाले व्यक्ति के सामने श्री माँ थीं जिन्हें वो अपने कृष्ण के रूप में पुकारती थीं। श्री माँ और पॉल रिचर्ड श्री अरविन्द के आध्यात्मिक कार्यों की पहली किस्तों में सहयोगी बने। तीनों ने मिलकर आर्य नामक मासिक पत्रिका आरम्भ की जिसके माध्यम से श्री अरविन्द की पुस्तकों की श्रृंखला आम जनमानस तक पहुँची। 1920 से आश्रम उन्हीं की देख रेख में आगे बढ़ता गया। पाण्डिचेरी में श्री अरविन्द के साथ अनेक उपासक, साधक एवं उनके अनुगामी रहने लगे। बच्चों की संख्या बढ़ने के बाद उन्होंने बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उत्कृष्ट श्री अरविन्द अन्तराष्ट्रीय शिक्षा केंद्र की शुरुआत की जो भारत में अपने आप में अद्भुत प्रयोग था। मानवता के लिए श्री अरविन्द के स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए श्री माँ ने अन्तर राष्ट्रीय शहर ओरोविल की आधारशिला 28 फरवरी 1968 को रखी जहाँ आज 50 देशों के 5000 लोग श्री अरविन्द और भारत के मानव एकता के स्वप्न को विश्व धरा पर चरितार्थ करने को साथ में रह रहे हैं। श्री माँ ने भारत की एक

अध्यात्मिक उन्नति के लिए भारत को पूरे विश्व के गुरु के रूप में स्थापित करने की बात कही थी और कहा था **केवल भारत ही वर्तमान मानवता की सारी समस्याओं को सुलझाएगा।**

कर्मधारा का वर्तमान अंक इसी महत्वपूर्ण दिन को समर्पित है जिसका विस्तार इसी पत्रिका एक अन्य लेख में विवरणित है।

पाठकों के विचारों और सुझावों का स्वागत है।

रूपा गुप्ता

जिस भगवान को हम खोजते हैं वह कहीं दूर और पहुँच के बाहर नहीं है। वह अपनी सृष्टि के हृदय में है और वह हम से बस यही चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें और अपने-आपको रूपान्तरित करके उन्हें जानने योग्य बनें, उनके साथ तादात्मय होकर अन्ततः सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करें।

हमें अपने-आपको इसके लिये अर्पित कर देना चाहिये; हमारे जीवन का यही सच्चा कारण है और इस उच्चतम उपलब्धि की ओर हमारा पहला ठहराव है अतिमानसिक चेतना की उपलब्धि।

श्रीमाँ

श्रीमाँ

मेरे हृदय की गहन खामोशी में
एक मधुर गीत की तरह गूंज उठी है तेरी आवाज
और फिर अनूदित हो गई है इन शब्दों में
जो तूने कहे हैं कर सम्बोधित धरती को-

ओ दुखग्रस्त धरती याद रख
कि मैं हूँ सदा तेरे पास मत हो निराश!
तेरी हर खुशी, हर रंज,
तेरे हृदय की हर पुकार,
तेरे आत्मा की अभीप्सा

और तेरे ऋतु-परिवर्तनों का हर नव रूप
जो भी तुझे होता है प्रतीत सुखद या दुखद
सुन्दर या कुरूप
वह सब कुछ बिना अपवाद, निःसंशय
तुझे लाता है मेरी ही ओर मेरे ही पास।

अंधों को आलोक दो
मृतकों को प्राण दो
तुम करूणा के कण दान दो
मेरा हृदय शुष्क है कठिन पाषाण के समान है
अपने प्रेम की जलधार से

इन सूखे नयनों को करो सजल
हे! जो तुम्हें नहीं पुकारता
तुम्हीं उसे पुकारो
जो तुमसे दूर जाता है
उसे मत जाने दो, अपने निकट रखो

जो जन तुम्हारे सुधा सागर तीर पर भी
तृषित हो भटकता फिरता है
उसे अपने प्रेम जल से करो शीतल
कराओ अमृत पान हे महान्!

❧

जननी! तेरे दयास्निग्ध चरणों को

रविन्द्रनाथ ठाकुर

जननी! तेरे दयास्निग्ध चरणों को मैंने प्रभातकाल की

अरुण किरणों में देखा।

तेरी मृत्युंजयी वाणी नीरव आकाश में चुपचाप उठती है।

समस्त भुवन में तेरी मैं वंदना करता हूँ।

जीवन के समस्त कार्यों में तेरी स्तुति करता हूँ।

पावन भक्ति से तेरी पूजा-धूप में मैं आज अपना

तन-मन-धन सब अर्पित करता हूँ।

जननी! तेरे दयार्द्र चरण प्रभाती किरणों में मैंने देखे।

❧

स्थिरता, शांति, समता

श्री अरविन्द

यह बिल्कुल ठीक है कि यह भगवान् के यहाँ से आयी हुई करूणा है और ऐसी करूणा का एकमात्र प्रतिदान है उसे स्वीकार करना, कृतज्ञ बने रहना और जिस शक्ति ने चेतना को स्पर्श किया है उसके प्रति अपने-आपको खोले रखना और इस तरह उसे सत्ता के अंदर जो कुछ विकसित करना है उसे विकसित करने देना। प्रकृति का सर्वांगीण रूपांतर एक क्षण में नहीं किया जा सकता; इसमें दीर्घ समय लगेगा ही और यह विभिन्न स्तरों को पार करता हुआ ही आगे बढ़ेगा; अभी जो अनुभूति तुम्हें हुई है वह केवल आरंभ है, दीक्षामात्र है, जिस नवीन चेतना में उस रूपांतर का होना संभव होगा उसका आधारमात्र है। इस अनुभूति का अनायास अपने-आप होना ही इस बात को प्रकट करता है यह मन के, संकल्प के या भावावेग के द्वारा रचित कोई चीज़ नहीं है, यह एक ऐसे सत्य से आयी है जो इन सबसे परे है।

संदेहों को दूर करने का अर्थ है अपने विचारों को संयमित करना – यह बात बिल्कुल ठीक है। अपने विचारों को संयमित करना उतना ही आवश्यक है जितना कि प्राणमय कामनाओं और आवेगों को संयमित करना अथवा अपने शरीर की गतिविधि को संयमित करना – योग के लिये तो यह आवश्यक है ही, पर एकमात्र योग के लिये ही यह आवश्यक नहीं है (अर्थात् योग ना करने पर भी इसकी आवश्यकता होती है)। यदि कोई अपने विचारों को वश में ना करे, यदि उनका साक्षी, अनुमंता और ईश्वर –मनोमय पुरूष – ना बन जाये तो वह एक पूर्ण विकसित मनोमय जीव भी नहीं हो सकता। जिस तरह मनोमय जीव के लिये अपनी वासनाओं और आवेगों के तूफान में बेपतवार जहाज होना अथवा शरीर की जड़ता या प्रवृत्ति का दास होना उचित नहीं है उसी तरह उसके लिये अपने निरंकुश और असंयत विचारों की कठपुतली बनना भी उचित नहीं। मैं जानता हूँ कि यह बड़ा कठिन कार्य है, क्योंकि मनुष्य प्रधानता : मनोमय प्रकृति का एक जीव होने के कारण अपने मन की वृत्तियों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, हठात् उनसे अपने-आपको अलग नहीं कर सकता तथा मानस-भंवर के चक्करों और लपेटों से मुक्त होकर खड़ा नहीं हो सकता।

अपने शरीर को, कम-से-कम शरीर की क्रियाओं के कुछ भाग को संयमित करना उसके लिये अपेक्षाकृत अधिक आसान है;

अपने प्राण के आवेगों तथा वासनाओं के ऊपर एक मानसिक संयम स्थापित करना उतना आसान तो नहीं, पर फिर भी कुछ संघर्ष के बाद उसके लिये संभव हो जाता है; पर जिस तरह एक तांत्रिक योगी नदी के ऊपर बैठ जाता है उसी तरह अपने विचारों के भँवर के ऊपर बैठ जाना उसके लिये थोड़ा कठिन है। फिर भी यह किया जा सकता है; उन सभी मनुष्यों को, जिनका मानसिक विकास हो चुका है, जो साधारण मनुष्यों से ऊपर उठ चुके हैं, किसी-ना-किसी तरह अथवा कम-से-कम किसी विशेष समय पर और किसी विशेष प्रयोजन के लिये अपने मन के दो भागों अलग-अलग करना ही पड़ता है- एक भाग है सक्रिय, जो विचारों का कारखाना है और दूसरा है प्रशांत और प्रभुत्वपूर्ण, जो एक साथ ही साक्षी भी है और संकल्पशक्ति भी, जो विचारों को देखता है, उनका निर्णय करता है, वर्जन करता है, बहिष्कार करता है, स्वीकार करता है, संशोधन और परिवर्तन की आज्ञा देता है, मनोमय गृह का स्वामी है, आत्मप्रभुत्व का– साम्राज्य का– अधिकारी है।

योगी इससे भी आगे जाता है, वह केवल मन के अंदर ही स्वामी नहीं होता, बल्कि एक प्रकार से मन में रहते हुए भी वह मानों उससे बाहर चला जाता है और उससे ऊपर या एकदम उसके पीछे अवस्थित होता है तथा उससे मुक्त रहता है। उसके विषय में अब 'विचारों के कारखाने' की उपमा उतनी लागू नहीं होती; क्योंकि वह देखता है कि सभी विचार बाहर से, विश्वमानस या विश्व-प्रकृति से आते हैं, कभी-कभी तो उनका निर्दिष्ट और स्पष्ट रूप होता है और कभी-कभी कोई रूप नहीं होता और जब उनका कोई रूप नहीं होता तब उन्हें कहीं हमारे अंदर रूप प्राप्त होता है। हमारे मन का प्रधान कार्य यह है कि वह इन विचार-तरंगों को साथ-ही-साथ प्राण की लहरों तथा सूक्ष्म-भौतिक शक्ति की लहरों को भी या तो स्वीकार करे या त्याग दे अथवा पारिपार्श्विक प्रकृति-शक्ति से आने वाली विचार-सामग्री को अथवा प्राण की गतियों को इस प्रकार व्यक्तिगत मनोमय आकार प्रदान करे।

मनोमय पुरूष के अंदर जो संभावनाएँ निहित हैं उनकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती, यह मुक्त साक्षी तथा अपने गृह का स्वामी हो सकता है। एक प्रकार की क्रमवर्धमान स्वतंत्रता प्राप्त करना तथा अपने मन पर प्रभुत्व स्थापित करना किसी भी साधक के लिये बिल्कुल संभव है, यदि उसमें श्रद्धा तथा ऐसा करने का दृढ़ संकल्प मौज़ूद हो।

पहली सीढ़ी है अचंचल मन – निश्चल-नीरवता है उसके बाद की सीढ़ी; फिर भी अचंचलता वहाँ अवश्य रहनी चाहिये; और अंचचल मन से मेरा मतलब यह है कि भीतर एक ऐसी मनोमय चेतना होनी चाहिये जो यह देखती है कि विचार उसके पास आ रहे

हैं और इधर-उधर मंडरा रहे हैं, पर वह स्वयं यह नहीं अनुभव करती कि वह विचार कर रही है या उन विचारों के साथ तादात्म्य स्थापित कर रही है या उन्हें अपना समझ रही है। विचार, मानसिक गतियाँ उसके भीतर से होकर ठीक उसी तरह गुजर सकती हैं जिस तरह पथिक कहीं बाहर से एक शांत प्रदेश में आते हैं और उसमें से होकर चले जाते हैं- अचंचल मन उन्हें देखता है अथवा देखने की परवाह भी नहीं करता, परंतु उन दोनों ही अवस्थाओं में, वह ना तो क्रियाशील होता है ना अपनी अचंचला को ही खोता है। निश्चल-नीरवता अचंचलता से कुछ अधिक चीज़ है; इसे प्राप्त करने का उपाय है आभ्यंतरीण मन से विचारों को सर्वथा बाहर निकाल देना और मन को एकदम निःशब्द बना देना या उसे हटाकर एकदम विचारों से बाहर रखना। परंतु इससे भी अधिक आसानी से इसकी स्थापना होती है ऊपर से इसका अवतरण होने पर – साधक इसे नीचे उतरती हुई, व्यक्तिगत चेतना में प्रवेश करती हुई और उसे अधिकृत करती हुई या उसे चारों ओर से घेरती हुई अनुभव करता है और तब उसकी व्यक्तिगत चेतना विशाल निर्व्यक्तिक निश्चल-नीरवता में अपने-आपको विलीन करने में प्रवृत्त होती है।

शांति (Peace), स्थिरता (Clam), अचंचलता (Quiet) और निश्चल-नीरवता (Silence) – इनमें से प्रत्येक शब्द के अर्थ की अपनी-अपनी एक अलग छाया है, परंतु इनकी ठीक-ठीक परिभाषा देना आसान नहीं है। अचंचलता एक ऐसी अवस्था है जिसमें तनिक भी चांचल्य या विक्षोभ नहीं होता। **स्थिरता** और भी अधिक अटल अवस्था है जिस पर किसी प्रकार के विक्षोभ का असर नहीं हो सकता-यह अचंचलता से कम अभावात्मक अवस्था है।

शांति और भी अधिक भावात्मक अवस्था है; इसमें एक सुप्रतिष्ठित और सामंजस्यपूर्ण विश्रांति और मुक्ति का बोध निहित होता है। निश्चल-नीरवता एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन या प्राण की या तो कोई क्रिया ही नहीं होती या वहाँ एक ऐसी महान् निस्तब्धता छायी रहती है जिसे कोई भी ऊपरी क्रिया ना तो भेद सकती है, ना बदल सकती है।

मन की अचंचलता को बनाये रखो और अगर वह अचंचलता कुछ समय तक सूनी भी मालूम हो तो उसकी कोई परवाह मत करो; हमारी चेतना बहुत बार एक पात्र की तरह होती है जिसमें से मिश्रित तथा अवांछनीय वस्तुओं को निकाल देना पड़ता है और उसे कुछ समय तक खाली रखना पड़ता है, जबतक कि वह नवीन और यथार्थ, उचित और विशुद्ध वस्तु से नहीं भर दी जाती। परंतु उस समय एक बात से बचना चाहिये और वह यह है कि कहीं उन्हीं पुरानी गंदी चीज़ों से वह पात्र फिर ना भर

जाये। उतने दिन प्रतीक्षा करो, ऊपर की ओर अपने-आपको खोले रखो, बड़ी धीरता और स्थिरता के साथ, अत्यधिक बेचैनी और व्याकुलता के साथ नहीं, शांति का आवाहन करो जिससे उस निश्चल-नीरवता में वह उतर आये, और जब एक बार वहाँ शांति स्थापित हो जाये तो आनंद और भागवत उपस्थिति का आवाहन् करो।

यद्यपि आरंभ में स्थिरता एक अभावात्मक वस्तु ही मालूम होती है, फिर भी इसे प्राप्त करना इतना कठिन है कि यदि उसकी भी प्राप्ति हो जाये तो यह मानना पड़ेगा कि साधना में बहुत कुछ उन्नति हो गयी है।

वास्तव में स्थिरता कोई अभावात्मक वस्तु नहीं है, यह तो सत् पुरूष का अपना स्वरूप है और भागवत चेतना का भावात्मक आधार है। अन्य चाहे जिस वस्तु की अभीप्सा की जाये, चाहे कोई वस्तु प्राप्त की जाये, पर इसे अवश्य बनाये रखना चाहिये; यहाँ तक कि ज्ञान, शक्ति और आनंद अगर आते हैं और उन्हें यह आधार नहीं मिलता तो वे ठहर नहीं पाते और उन्हें तबतक के लिये वापिस लौट जाना पड़ता है जब तक कि सत्पुरूष की दिव्य पवित्रता और शांति वहाँ स्थायी रूप से स्थापित नहीं हो जाती।

भागवत् चेतना की जो और दूसरी-दूसरी चीज़ें हैं उनके लिये अभीप्सा करो, परंतु यह अभीप्सा स्थिर और गंभीर होनी चाहिये, यह स्थिर होती हुई भी तीव्र हो सकती है, पर यह अधीर, अशांत या राजसिक उत्सुकता से भरी हुई नहीं होनी चाहिये। केवल अचंचल मन और अचंचल सत्ता के अंदर ही अतिमानस सत्य अपनी सच्ची सृष्टि की रचना कर सकता है।

साधना में मानसिक स्तर से ही अनुभूति का आरंभ होता है- आवश्यक बात बस यही है अनुभूति शुद्ध हो, यथार्थ हो। मन के अंदर बुद्धि और संकल्पशक्ति का दबाव तथा हृदय के अंदर भगवान् के प्रति भावावेग- ये दोनों योगसाधना के सबसे पहले सहायक हैं, और वास्तव में जिस आधार को सबसे पहले स्थापित करना है वह है **शांति, शुद्धि और स्थिरता** साथ ही निम्न प्रकृति की बेचैनी का एकदम शांत हो जाना; और आरंभ में इन्हें प्राप्त करना अतिभौतिक जगतों की झाँकी पाने अथवा सूक्ष्म दृश्यों को देखने, सूक्ष्म वाणियों को सुनने और विशेष शक्तियों को प्राप्त करने से भी कहीं अधिक आवश्यक है। शुद्धि और स्थिरता योग की सबसे पहली आवश्यकताएँ हैं। किसी-किसी को इनके बिना भी उपर्युक्त अनुभूतियाँ (सूक्ष्म जगत्, सूक्ष्म दृश्य, सूक्ष्म वाणी इत्यादि) प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सकती हैं, परंतु अशुद्ध और अशांत चेतना में जब ये अनुभूतियाँ होती हैं तब वे प्रायः विशृंखल और विमिश्रत होती हैं।

आरंभ में शांति और स्थिरता निरंतर नहीं बनी रहतीं, वे आती हैं और फिर चली जाती

हैं, और प्रकृति में स्थायी रूप में जम जाने में उन्हें सामान्यतया एक लंबा समय लग जाता है। इसलिये यह अच्छा है कि अधीरता से अलग रहा जाये और जो कुछ कार्य किया जा रहा है उसी को लगातार जारी रखा जाये। अगर शांति और स्थिरता के अतिरिक्त भी और कोई चीज़ प्राप्त करना चाहो तो वह चीज़ होनी चाहिये तुम्हारी अंतःसत्ता का पूर्ण उन्मीलन और तुम्हारे अंदर भागवत शक्ति जो कार्य कर रही है उसके विषय में सचेतनता। इन दोनों के लिये सच्चाई के साथ और अत्यंत तीव्रता के साथ, पर बिना अधीर हुए, अभीप्सा करो और वे तुम्हें प्राप्त हो जायेंगी।

आखिरकार साधना का सच्चा आधार तुम्हें मिल गया। यह स्थिरता, शांति और समर्पण ही वह समुचित वातावरण है जिसमें बाकी सभी- ज्ञान, शक्ति और आनंद- आते हैं। इस स्थिति को पूर्ण होने दो। काम में लगे रहने पर जो यह स्थिति नहीं बनी रहती, इसका कारण यह है कि यह अभी ठीक मन के क्षेत्र में ही आबद्ध है और मन ने भी उस निश्चल-नीरवता के दान को अभी हाल में ही प्राप्त किया है। जब यह नयी चेतना पूर्ण रूप से गठित हो जायेगी और प्राणमय प्रकृति तथा भौतिक सत्ता पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लेगी (अभी तक निश्चल-नीरवता ने प्राण का स्पर्श मात्र किया है अथवा उस पर अपना एक प्रभाव भर फैलाया है, उसे अभी तक अधिकृत नहीं किया है), तब यह दोष दूर हो जायेगा।

तुमने अपने मन में जो अभी शांति की अचंचल चेतना प्राप्त की है उसे केवल स्थिर ही नहीं होना होगा, बल्कि उसे विशाल भी होना होगा। तुम्हें उसे सर्वत्र अनुभव करना होगा, यह अनुभव करना होगा कि तुम स्वयं उसमें हो और सब कुछ उसमें है। यह अनुभव भी कर्म के अंदर स्थिरता को आधार बनाने में सहायता करेगा।

तुम्हारी चेतना जितनी ही अधिक व्यापक होगी उतना ही अधिक तुम ऊपर से आने वाली चीज़ों को ग्रहण करने में समर्थ होगे। उस समय ऊपर से भागवत् शक्ति अवतरित हो सकेगी और तुम्हारे आधार में शांति के साथ-साथ शक्ति और ज्योति को भी ले आ सकेगी। अपने अंदर जिस चीज़ को तुम संकीर्ण और सीमित अनुभव कर रहे हो वह तुम्हारा भौतिक (स्थूल) मन है; यह तभी विशाल बन सकता है जबकि यह विशालतर चेतना और ज्योति नीचे उतर आयेंगी और तुम्हारी प्रकृति को अधिकृत कर लेंगी।

जिस भौतिक तामसिकता से तुम दुःख पा रहे हो वह केवल तभी कम हो सकती और दूर हो सकती है जब आधार में ऊपर से शक्ति का अवतरण हो। अचंचल बने रहो, अपने-आपको खोले रखो और भागवत् शक्ति का आवाहन करो ताकि वह स्थिरता और शांति को स्थापित करे, चेतना को

प्रसारित करे और अभी उसमें जितनी ज्योति और शक्ति ग्रहण करने और धारण करने की क्षमता हो उतनी उसके अदंर ले आये।

इस विषय में सावधान रहो कि कहीं अत्यधिक उत्सुकता ना हो जाये,अन्यथा उससे, जितनी अचंचलता और समतोलता प्राण-प्रकृति में अब तक प्रतिष्ठित हो चुकी है वह फिर से भंग हो सकती है। अंतिम परिणाम में विश्वास बनाये रखो और दिव्य शक्ति को अपना काम करने के लिये समय दो।

अभीप्सा करो, समुचित मनोभाव के साथ एकाग्र होओ, और फिर चाहे जो भी कठिनाइयाँ हों, जो उद्देश्य तुमने अपने सामने रखा है उसे तुम अवश्य प्राप्त करोगे। पीछे जो शांति है और तुम्हारे अंदर जो "अधिक सत्य कोई वस्तु" है, उसी में निवास करना तुम्हें सीखना होगा और यह अनुभव करना होगा कि यही वस्तु तुम स्वयं हो और इसके अतिरिक्त और जो कुछ है उसे तुम्हें अपना वास्तविक स्वरूप नहीं समझना होगा जो बराबर परिवर्तित होती रहती है या बार-बार घटित होती रहती है और जो वास्तविक स्वरूप के प्रकट होते ही निश्चित रूप से बंद हो जाती है।

इसका सच्चा प्रतिकार है शांति; कठिन कार्य में लगकर मन को दूसरी ओर फेर लेने से केवल अस्थायी रूप से ही कुछ चैन मिल सकता है- यद्यपि आधार के विभिन्न भागों में समुचित सामंजस्य बनाये रखने के लिये कुछ कार्य करना आवश्यक है। अपने सिर के ऊपर और इसके इर्द-गिर्द शांति का अनुभव करना पहली सीढ़ी है; तुम्हें उस शांति के साथ अपना संबंध स्थापित करना होगा और उसे तुम्हारे अंदर अवतरित होकर तुम्हारे मन, प्राण और शरीर में भर जाना होगा तथा तुम्हें इस प्रकार घेर लेना होगा कि तुम उसी में निवास करने लगो- क्योंकि तुम्हारे साथ भगवान् की उपस्थिति के होने का एकमात्र चिह्न यही शांति है, और अगर एक बार तुम इसे पा लो तो बाकी चीज़ें अपने-आप आना आरंभ कर देंगी।

भाषण में सत्यता और विचार में सत्यता बहुत ही महत्वपूर्ण है। जितना ही अधिक तुम यह अनुभव करोगे कि मिथ्यात्व तुम्हारा अपना अंश नहीं है, वह बाहर से तुम्हारे अंदर आता है, उतना ही अधिक उसका त्याग करना और उसे स्वीकार करना तुम्हारे लिये आसान हो जायेगा। अपना प्रयास जारी रखो और जो कुछ अभी वक्र है वह सरल हो जायेगा तथा भगवान् की उपस्थिति के सत्य को तुम निरंतर जानने और अनुभव करने लगोगे और प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारा तुम्हारी श्रद्धा की सत्यता प्रमाणित हो जायेगी।

सबसे पहले यह अभीप्सा करो और श्रीमाँ से प्रार्थना करो कि तुम्हारे मन में अचंचलता स्थापित हो, तुममें शुद्धता, स्थिरता और शांति का निवास हो, तुम्हें प्रबुद्ध चेतना,

प्रगाढ़ भक्ति तथा समस्त आंतर और बाह्य कठिनाइयों का सामना करने के लिये और योगसाधना में अंत तक पहुँचने के लिये बल और आध्यात्मिक सामर्थ्य प्राप्त हो। अगर चेतना जागृत हो जाये और वहाँ भक्ति तथा अभीप्सा की तीव्रता हो तो मन के लिये क्रमशः ज्ञानसमृद्ध होना संभव हो जायेगा, अवश्य ही अगर वह अचंचल और शांत होना सीख ले।

इसका कारण है शारीरिक सत्ता, विशेषकर शरीरदत्त प्राण-सत्ता की अत्यधिक सचेतनता और तीव्र संवेदनशीलता। शरीर के लिये यह अच्छा है कि वह अधिकाधिक सचेतन होता जाये, पर उसे इन सब साधारण मानवोचित प्रतिक्रियाओं से, जिनके प्रति वह सजग होता है, अभिभूत अथवा बुरी तरह प्रभावित या विपर्यग्रस्त नहीं होना चाहिये। मन की तरह ही स्नायुओं तथा शरीर में भी एक प्रकार की सुदृढ़ समता, प्रभुता और अनासक्ति का भाव आना चाहिये जिससे शारीरिक सत्ता बाहरी चीज़ों से जरा भी विचलित हुए बिना इन्हें जानने और इनसे संबंध स्थापित करने में असमर्थ हो सके। परिपार्श्विक वातावरण में विभिन्न क्रियाओं का जो दबाव पड़ता है उन्हें शरीर को जानना चाहिये, उनके विषय में सचेतन होना चाहिये, उनका त्याग करना चाहिये और उन्हें दूर फेंक देना चाहिये, ना कि केवल उनका अनुभव करना और उनसे दुःखी होना चाहिये।

अपनी कमजोरियों और कुप्रवृत्तियों को पहचानना और उनसे अपने-आपको अलग कर लेना- यही मुक्ति की ओर ले जानेवाला मार्ग है। **जब तक कोई स्थिर मन और स्थिर प्राण के साथ वस्तुओं को ना देख सके तब तक अपने सिवा किसी दूसरे के विषय में कोई विचार निश्चित नहीं करना चाहिये- यह बहुत अच्छा नियम है।** साथ ही, किसी बाह्य रूप को देखते ही उसी के आधार पर तुम अपने मन को कोई धारणा मत बनाने दो और ना प्राण को उस धारणा के आधार पर कोई कार्य करने दो।

आंतर सत्ता में एक ऐसा स्थान है जहाँ सर्वदा शांत-स्थिर रहा जा सकता है और वहाँ से बाह्य चेतना की हलचलों को समता के साथ और विचारपूर्वक देखा जा सकता है तथा उन्हें परिवर्तित करने के लिये उनके ऊपर कार्य किया जा सकता है। अगर तुम आंतर सत्ता की उस स्थिरता में निवास करना सीख जाओ तो तुम्हें अपनी साधना का स्थायी आधार प्राप्त हो जायेगा।

किसी भी बात से अपने-आपको विचलित या विक्षुब्ध मत होने दो। एक बात जो सदा करनी है वह है- भगवान् के प्रति अपनी अभीप्सा में अटल बने रहना और सभी कठिनाइयों तथा विरोधों का समता और अनासक्ति के साथ सामना करना। **जो लोग आध्यात्मिक जीवन-यापन करना चाहें उनकी दृष्टि में भगवान् का स्थान सदा**

सबसे पहले आना चाहिये, अन्य सभी चीज़ें गौण होनी चाहिये।

अपने-आपको अनासक्त रखो और इन सब चीज़ों की ओर उस मनुष्य की धीर-स्थिर आंतर दृष्टि से देखो जो भीतर-ही-भीतर भगवान् के चरणों में समर्पित हो चुका है। अभी तुम्हारी अनुभूतियाँ मन की भूमिका में हो रही हैं, परंतु यही ठीक क्रिया है। बहुत-से साधक इसी कारण अग्रसर होने में असमर्थ हो जाते हैं कि वे मन और अंतरात्मा के तैयार होने से पहले ही अपने प्राणमय स्तर को खोल देते हैं।

मानस-स्तर में कुछ सच्ची आध्यात्मिक अनुभूतियों के आरंभ होते ही प्राणमय स्तर में एक असामयिक अवतरण होता है और उसके फलस्वरूप बहुत अधिक गड़बड़ी और हलचल मच जाती है। इससे अपने-आपको बचाना होगा और इससे भी बुरा तब होता है जबकि प्राणमय वासना-पुरूष, मन में आध्यात्मिक वस्तुओं का स्पर्श होने से पहले ही अनुभूतियों की ओर खुल जाता है। **सर्वदा यह अभीप्सा करते रहो कि तुम्हारा मन और हृत्पुरुष सच्ची चेतना और अनुभूति से भर जायें और तैयार हो जायें।** तुम्हें विशेष रूप से अचंचलता, शांति, स्थिर श्रद्धा, क्रमवर्द्धमान अविचल प्रसारता के लिये, अधिकाधिक ज्ञान के लिये तथा गंभीर और तीव्र परंतु चांचल्यहीन भक्ति के लिये अभीप्सा करनी चाहिये।

अपनी परिपार्श्विक अवस्थाओं तथा उनके विरोधों से विचलित मत होओ। ये अवस्थाएँ प्रायः आरंभ में अग्नि-परीक्षा के रूप में साधक के सामने उपस्थित की जाती हैं। अगर तुम शांत और अविचल बने रहो और इन परिस्थितियों में भी अपने भीतर बिना घबराये हुए अपनी साधना को जारी रखो तो इससे तुम्हें एक अत्यंत आवश्यक शक्ति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। योग-मार्ग सदा ही आंतर और बाह्य कठिनाइयों से भरा रहता है और इनका सामना करने के लिये साधक को अपने अंदर एक अचंचल, सुदृढ़ और ठोस शक्ति का विकास करना ही चाहिये।

❧

वे माँ की सच्ची सन्तान थे

त्रियुगी नारायण

माँ मन्दिर की स्थापना के पूर्व अपने यहां एक श्रीअरविन्द स्वध्याय केन्द्र चलता था जिसके कारण श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी और दिल्ली की विशिष्ट सूचनाएं एवं दर्शन दिवसों की विशेष विज्ञप्तियां तथा आशीर्वाद हम लोगों को समय-समय पर मिलते रहते थे । इसी तारतम्य में श्रीअरविन्द कर्मधारा का प्रथम अंक भी हमें पूज्य श्री जौहर साहब के भावपूर्ण सरल लेख, सुन्दर कहानियां और उनके संस्मरणों को पढ़ने का अवसर मिला । इस तरह प्रथम सम्पर्क में ही हमें वे अपने से लगे और उन्होंने हमें अपनी ओर आकर्षित किया।

बाद में जब 'श्री अरविन्द कर्मधारा ' में उनका 'मेरी माँ ' नामक स्तम्भ धारावाहिक बढ़ गया और हम सब बड़ी बेचैनी और उत्सुकता के साथ कर्मधारा के अगले अंक की प्रतीक्षा करते और उसे बार-बार पढ़ते थे । इस तरह हमारा यह आन्तरिक सम्पर्क दिनों-दिन बढ़ता गया , घनीभूत होता गया।

आखिर यह पावन घड़ी भी आई जब पूज्य श्री जौहर साहब , श्री पराशर जी , सुश्री करूणामयी जी , तारा दीदी , इन्दु जी तथा अपने अन्य देशी विदेशी संगी साथियों सहित अपने पूरे साज-बाज के साथ दिनांक 12 मार्च 1979 को माँ मन्दिर आये। इस समागम में पांडिचेरी से श्री उदार पिण्टो , श्री छोटेनारायण शर्मा , विद्यावती कोकिल तथा अन्य केन्द्रों से बहुत से साधक आये हुये थे। माँ मन्दिर का वह एक स्वर्णिम मुहूर्त था। श्री माँ का यह आनन्द उत्सव लगातार तीन दिनों तक चलता रहा।

इस साक्षात् सम्पर्क में हमें पूज्य श्री जौहर साहब का जो वात्सल्य , स्नेह और दुलार मिला वह अवर्णनीय है । मिश्री से भी मीठी उनकी कहानियां , गोलगप्पे जैसे उनके सुन्दर व चटपटे चुटकुले सुनते हुये हम कभी अघाते नहीं थे । घण्टों उनके पास बैठकर माताजी के संस्मरण सुनते रहते थे । उन्होंने भी विशेष स्नेह और उदारतापूर्वक बिना कुछ बचाये अपना सारा हृदय भण्डार हमारे सामने खोल दिया था। अब तो सारी दूरी और सारे भेद-भाव समाप्त गये थे और सब प्रकार से उन्होंने हमें अपना बना लिया था।

दूसरी बार बिना किसी पूर्व सूचना के जौहर जी सन् 1989 में सुश्री करुणा दीदी , श्रीमती हेमलता राव , शिशु आनन्द , एयर वाइस मार्शल सुरेन गोयल , डॉ0 हमीद और कुमारी सितारे जी के साथ माँ मन्दिर

आये और 10 फीट की एक तंग कोठरी में सबने अपना गुजर बसर किया। 2 फरवरी से 8 फरवरी तक यानि पूरे सात दिनों तक पुन: यहां आनन्द की धूम मची रही । श्री अरविन्द के जिस योग दर्शन को समझने में जहां धुरन्धर विद्वानों के भी पसीने छूटते हैं उसी योग दर्शन को वे सहज कथा-कहानियों के माध्यम से अपनी सरस शैली में सुनाते रहते थे और इस विरल समाधि में कितना समय बीत गया यह किसी को ध्यान ही नहीं रहता था। उनका माँ मन्दिर की मिट्टी से इतना प्यार था जो देखते ही बनता था। 8 फरवरी को उन्होंने यहाँ मातृ शिशु मन्दिर का शिलान्यास किया और यह आशीर्वाद दिया कि यह संस्था देश की एक बहुत बड़ी विद्यापीठ होगी। उन्होंने यहां के लोगों को आश्वस्त किया कि "भगवान् यहाँ हैं इसलिये आवश्यकतानुसार अन्य सभी साधन भी अपने समय पर उपलब्ध होंगे , इसमें चिन्ता करने की कोई बात नहीं है।"

केवल माता की शक्ति, कोई मानवी प्रयास और तपस्या नहीं, आच्छादन को छिन्न और आवरण को विदीर्ण कर पात्र को सत्य-स्वरूप में गढ़ सकती है और इस अन्धकार, असत्य, मृत्यु और क्लेश के जगत में सत्य, प्रकाश, दिव्य जीवन और अमृतत्व का आनन्द ले आ सकती है।

श्रीअरविन्द

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली में मेरे पच्चीस वर्ष

त्रियुगी नारायण

दि0 21 अप्रैल 1991। उस दिन रात को सो नहीं पाया और पूरी रात जागरण में ही बीती। अपना मन खिन्न और उदास था। दिल रो रहा था। भगवान् के प्रति आक्रोश था और उसे मन ही मन कोस रहा था। भगवान्! तू बड़ा अन्यायी है, निर्दयी और कठोर है। सरकार के सामान्य कर्मचारी भी साठ वर्ष पूरे होने पर सेवामुक्त होकर अपने गाँव आ जाते हैं। लेकिन एक तू है जो मेरी इस 60 वर्ष की उम्र में अपने गाँव और अपनी प्यारी जन्मभूमि से मुक्त निर्वासित कर रहा है। भला ऐसा क्यों?

किसी तरह रात बीती और सुबह हुई। नित्य क्रिया से निवृत्त हुआ माँ मन्दिर में झाड़ू पोंछा लगाया। श्री अरविन्द, श्री माँ को पुष्प अर्पित किया और उन्हें प्रणाम कर चल पड़ा एक अज्ञात दिशा की ओर। बस स्टैण्ड रीवा पहुँचा और जा बैठा एक बस में जो इलाहाबाद की ओर रवाना हो रही थी। कुछ समय पश्चात् अपनी बस चाकघाट पहुँची जो मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश की सीमा में स्थित एक प्रमुख बस स्टैण्ड है। वहाँ बस रूकने पर सभी यात्री चाय पानी पीने के लिये नीचे दुकान पर बैठे, तभी हमने सुना उस गीत को जो उस दुकान पर लाउड स्पीकर से बज रहा था-

"उड़ जा ओ पंछी कि अब यह देश हुआ बेगाना।"

और यह गीत सीधे मेरे मर्म को भेद रहा था, आँखें थमने का नाम नहीं ले रही थीं, जब तक इलाहाबाद पहुँच नहीं गया तब तक आँसुओं की यह अविरल धारा बराबर प्रवाहित होती रही। इलाहाबाद में बस से उतरकर रेलवे स्टेशन पहुँचा लेकिन वहां किसी भी ट्रेन में दिल्ली का टिकट मिला ही नहीं। विवश होकर अपने एक मित्र श्री चौथराम जी यादव के यहाँ रात गुजारी। सौभाग्य से दूसरे दिन रात को मुझे 'प्रयाग राज' नामक ट्रेन में दिल्ली का टिकट मिल गया और दूसरे दिन 24 अप्रैल के दर्शन दिवस पर 10 बजे पूर्वाह्न में मैं दाखिल हुआ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली में।

आश्रम में सर्वप्रथम भेंट हुई तारा जी से। बड़े प्रेम से मिलीं और कुशल प्रश्न के बाद उन्होंने पूछा- "आपका सामान कहाँ है?" उस समय मेरी हालत 'सुदामा की धोती फटी सी लटी दुपटी' से भिन्न नहीं थी। मेरे साथ एक छोटा सा थैला था जिसमें एक धोती और कुरते के सिवाय कोई सामान नहीं। तारा जी को मेरी स्थिति समझने में देर ना लगी। वे तुरन्त अपनी कुर्सी से उठीं, मुझे

अपने साथ लिया और नवनिर्मित तपस्या के एक आलीशान कमरा न0 125 में ठहरा दिया। यह कमरा बहुत ही सुन्दर सुसज्जित और सभी सुविधाओं से युक्त था। प्रकाश और हवा की इतनी अच्छी व्यवस्था कि यदि बिजली ना भी रहे तो कोई परेशानी नहीं। इस अतिथिगृह के तीन बड़े कक्षों का उद्घाटन अभी केवल 20 दिन पूर्व 4 अप्रैल को ही हुआ था।

स्नानोपरान्त 24 अप्रैल के पावन दर्शन दिवस के कार्यक्रमों में भाग लिया। देवी करूणामयी जी के भक्ति पूर्ण गीतों से हृदय तरंगित हो उठा। समाधि में प्रणाम और ध्यानकक्ष में ध्यान हुआ।

शाम को पुनः ताराजी से भेंट हुई। उन्होंने पूछा कि आप हमें यह बतायें कि आप यहाँ आश्रम में कोई काम अपनी पसन्द के अनुसार लेना चाहेंगे अथवा यहाँ आश्रम की जरूरत के अनुसार आपको जो दे दिया जाये। मैंने उन्हें बताया कि इसके लिये मेरी कोई पसन्दगी नहीं है, बल्कि आश्रम की आवश्यकता के अनुरूप कोई भी काम करने में मुझे आपत्ति नहीं होगी। इस पर तारा जी ने कहा कि इस समय आश्रम के मातृसर्विस स्टोर में कार्यकर्ताओं की कमी है इसलिये आपको वहाँ के काम में सहयोग करना होगा। लेकिन एक बात का ध्यान रहे वहाँ के इंचार्ज शंकरानन्द जी से किसी की पटती नहीं, उनके साथ प्रायः सबके झगड़े होते रहते हैं, अतः आपको उनसे सतर्क रहना होगा।

दूसरे दिन सुबह मुझे मातृसर्विस स्टोर पहुँचा दिया गया और श्री शंकरानन्द जी को यह बता दिया गया कि मैं उनके साथ एक सहयोगी के रूप में काम करूँगा।

वास्तव में हमारे विभागाध्यक्ष श्री शंकरानन्द जी अवकाश प्राप्त एक शासकीय थे जिनके काम से प्रसन्न होकर हमारे पूज्य चाचाजी श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर ने आश्रम में रख लिया था। वे श्रीमाता जी के बड़े भक्त, अपने उसूलों के बड़े पक्के साथ ही बड़े गुस्सैल प्रकृति के भी थे। वयोवृद्ध होने के बावजूद वे नित्य 5 बजे सुबह स्टोर पहुँच जाते, वहाँ पर स्वयं झाड़ू पोंछा लगाकर कमरों की सफाई करते और क्या मजाल कि कभी स्टोर खोलने में एक मिनट की भी देर हो जाये। समय के वे बड़े पाबन्द थे। इसी तरह निर्दिष्ट समय पर स्टोर बन्द करने में उन्हें एक सैकेण्ड का भी विलम्ब ना होता, भले ही किसी ग्राहक की खरीदारी अधूरी ही क्यों ना रह गई हो। किसी भी आरज़ू मिन्नत का तब उनके ऊपर कोई भी असर ना होता और जरा-जरा सी बातों पर ग्राहकों से उनका झगड़ा हो जाना एक आम बात थी। सच्चे इतने थे कि यदि घी की बोतल उनके हाथ से छूटकर फूट जाती तो तुरन्त उस घी के पूरे पैसे अपनी जेब से निकाल कर उसकी भरपाई कर देते और मितव्ययी इतने कि

आश्रम का पूरा कैश कई वर्षों पुराने और फटे प्लास्टिक के एक काले थैले में लेकर अपने आवास आते जाते जिसके बीच रास्ते में नोटों की बरसात होती रहती जिसे बताने पर भी उन्होंने अपने चिरसखा उस काले बैग को रिटायर करना कभी उचित नहीं समझा। यद्यपि उस सहकार्य में उनके साथ मेरा कभी झगड़ा नहीं हुआ लेकिन अन्त में उनकी बड़ी उम्र और उनके काले बैग से नोटों को गायब होते देखकर तारा जी ने उन्हें पोस्टेज सम्बन्धी हल्का फुलका काम सौंप दिया और स्टोर का इंचार्ज मुझे बना दिया। इस पर श्री शंकरानन्द जी को भारी क्रोध आया, उन्होंने आश्रम का काम ही छोड़ दिया। कुछ दिनों के पश्चात उनका लड़का उन्हें अपने घर ले गया, लेकिन वहाँ भी उनकी अपनी पत्नी और लड़के से पटी नहीं, प्रायः कलह होती रही और एक रात को जब परिवार के सभी लोग सो रहे थे तब क्रोध में आकर वे अपने घर से निकल पड़े। उनका बहुत खोज बीन के उपरान्त भी आज तक कहीं कोई पता नहीं चला।

मातृ स्टोर का कार्य मेरे लिये बहुत आनन्दायी रहा। स्टोर की सभी चीजें नपी तुली और सुन्दर पैकेटों में रैकों के ऊपर व्यवस्थित रूप से सजीं होती थीं जिनका मूल्य भी पैकेटों में अंकित होता था। इससे काम बहुत आसान था। ग्राहक स्वयं अपनी इच्छित वस्तु उठाते, केवल उनसे पेमेन्ट करने को कहना पड़ता जो तुरन्त हो जाता। दोपहर नित्य अवकाश के समय मातृ अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालय के हजारों विद्यार्थियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती, लेकिन लाइन में और अनुशासित ढंग से और जूस, केक, समोसा आदि भी बिक्री से आधे घण्टे के भीतरही हजारों की बिक्री हो जाती और जब तीन-तीन लड़कियाँ अपने सारे भेद भाव भूलकर एक ही बोतल से जूस पीतीं तब उनकी सहभागिता और आत्मीयता देखते ही बनती। कुछ ही समय पश्चात अपने ग्राहकों के साथ हमारे सम्बन्ध बहुत मधुर हो गये। दशहरा दीपावली जैसे त्यौहारों के अवसरों पर उनसे उपहार और मिठाईयाँ मिलने लगीं।

अपने प्रारंभिक काल में मेरा जीवन एक कृषक का कठोर जीवन था। वह कठिन गर्मी, भारी वर्षा और ठिठुरती हुई सर्दी के अथक श्रम का जीवन था। इन कठिन समयों से गुजरते हुये मेरा हृदय कराह उठता था। आह! कितने सुखी हैं वे दुकानदार! जिन्हें यह सब कष्ट नहीं भुगतना पड़ता और अपने घरों की छाया तले आराम से बैठकर काम करते हैं और उनकी कमाई भी इतनी अधिक कि बड़ी-बड़ी हवेलियां खड़ी होने में देर नहीं लगती जबकि एक किसान का जीवन कितना दूभर और दयनीय है। लगता है इसी का अनुभव कराने के लिये श्री माँ ने मेरे लिये अपनी इस लीला की रचना की।

मातृ सर्विस स्टोर के साथ-साथ मुझे नित्य रात को अहिन्दी प्रदेश के लड़कों को एक घण्टा हिन्दी पढ़ाने का उत्तरदायित्व भी सौंपा गया था। इन प्रशिक्षार्थियों में से अधिकांश लड़के और लड़कियां मद्रास, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र, असम, मिजोरम, अरूणाचल, बंगाल और उड़ीसा के थे। चूँकि हिन्दी के अतिरिक्त मुझे अंग्रेजी अथवा अन्य कोई भी भाषा नहीं आती थी, इसलिये शुरू-शुरू में मेरे समक्ष बड़ी कठिनाई आयी और एक दिन तो तामिल प्रदेश के प्रशिक्षार्थियों ने मेरी कक्षा का बहिष्कार ही कर दिया। जिसकी सूचना दूसरे दिन मैंने तारा जी को दी और उनसे निवेदन किया कि इस कार्य के लिये मैं सर्वथा अयोग्य हूँ अतएव यह कार्य किसी सुयोग्य व्यक्ति को सौंप दिया जाये। लेकिन भला वे कब मानने वालीं थीं। उसी रात वे हमारी हिन्दी की कक्षा में पहुँच गईं और तामिल क्षेत्र के बहिष्कार करने वाले लड़कों को खूब डाँटा और उन्हें समझाया कि किस तरह से पांडिचेरी के तामिल भाषी क्षेत्र में रहकर उन्होंने तामिल भाषा सीखी है। इसके बाद तो मेरी हिन्दी की यह कक्षा निर्बाध रूप से कई वर्षों तक बड़े अच्छे ढंग से चलती रही और छः महीने की अवधि के भीतर ही अहिन्दी प्रदेश के बहुत से युवाओं ने बोलचाल की सरल हिन्दी लिखना, पढ़ना और बोलना सीख लिया। उनके बीच अपने अच्छे सम्बन्ध बने और कालान्तर में जब वे प्रशिक्षण के पश्चात् अपने-अपने प्रदेशों में लौटे तो वहाँ से भी बराबर हिन्दी में उनके पत्र और फोन आते रहे।

❧

कोई भी आर्थिक व्यवस्था, उसकी तैयारी का स्तर कोई भी हो, मनुष्य के कष्टों का हल करने में समर्थ नहीं है।

मनुष्य को चेतना के एक उच्च स्तर तक उठना चाहिये और अपने अज्ञान, सीमा और स्वार्थपरता से मुक्त होना चाहिये जिससे कि वह अपने कष्टों से भी छुटकारा पा सके।

श्रीमाँ

श्रीमाँ के वचन

आज मुझसे अवतार के बारे में बोलने के लिये कहा गया है।

पहली बात तो मुझे यह कहना है कि श्रीअरविन्द ने इस विषय पर लिखा है और जिसने मुझसे यह प्रश्न किया है वह श्रीअरविन्द का लिखा हुआ पढ़ना शुरू करे तो अच्छा होगा।

वैदिक और कैलडियन धाराओं से भी पुरानी परंपराओं के बारे में बताऊँगी; ऐसी परंपरा जो लगता है इन दो ज्ञात धाराओं के मूल में रही होगी। इसमें कहा जाता है कि जब विरोधी शक्ति के द्वारा – जिन्हें हिन्दू परम्परा में असुर कहते हैं- यह संसार अपने 'ज्योति' और जन्मजात 'चेतना' के विधान के अनुसार प्रगति करने के बजाय, तम, निश्चेतना और अविद्या जिनसे हम परिचालित हैं, में डूब गया, तब 'सृजनकारी शक्ति' ने 'परम् आदि मूल' की अभ्यर्थना की। इस पथ भ्रष्ट विश्व को बचाने के लिये विशेष हस्तक्षेप की याचना की और इस प्रार्थना के उत्तर में 'परम मूल-स्रोत' से उद्भूत हुई प्रेम और चेतना से निर्मित एक विशेष सत्ता जिसने सीधे निबिड़ निश्चेतन जड़ में डुबकी लगायी ताकि वहाँ आदि 'चेतना' और प्रेम' के प्रति उसे जगाने का काम शुरू हो सके।

यदि इस निश्चेतन में कोई सचेतन भाव से प्रवेश करे तो अब भी वहाँ इस आलौकिक सत्ता' को देख सकेगा जो अभी तक गहरी नींद में सोयी हुई है, निस्सरण का अपना कार्य कर रही है, 'ज्योति' फैला रही है और वह उस समय तक यह करती रहेगी जब तक निश्चेतन निश्चेतन ना रह जायेगा जब तक दुनिया से अंधकार मिट नहीं जाता- और सारी सृष्टि 'अतिमानसिक' चेतना के प्रति सजग नहीं हो जाती और वास्तव में, सब अवतारों का मूल यही है। कहना चाहिये कि यह पहला वैश्व अवतार है जिसने धीरे-धीरे उत्तरोत्तर अधिक सचेतन शरीर धारण किये और अंत में उन परिचित – सी 'सत्ताओं' की पंक्ति में अविर्भूत हुआ जो विश्व को तैयार करने के काम को पूरा करने के लिये सीधी परम' के यहां से अवतरित हुई हैं, ताकि विश्व

निरंतर प्रगति के द्वारा अतिमानसिक ज्योति को उसकी संपूर्णता में ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने के लिये तैयार हो सके।

हर देश में, हर परम्परा में, यह घटना एक खास ढंग से, विभिन्न सीमाओं – के भीतर, विभिन्न विवरणों के साथ अमुक विशिष्टताओं के साथ प्रस्तुत की गयी है, लेकिन सच पूछो तो इन कथाओं का मूल एक ही है और कहा जा सकता है कि वह बीच की सब अवस्थाओं से गुजरे बिना अंधतम जड़ में 'परम' का सीधा सचेतन हस्तक्षेप है जिससे कि यह जड़-जगत् भागवत शक्तियों को धारण करने के लिये जाग उठे। इन अवतारों को अलग करने वाले अन्तराल उत्तरोत्तर छोटे होते दीखते हैं। मानों जैसे जड़ अधिकाधिक तैयार होता गया वैसे ही क्रिया भी जोर पकड़ती है और अधिक तेज होती चली गई, साथ ही अधिकाधिक सचेतन ओर अधिकाधिक प्रभावशाली और निर्णायक भी। और यह अपने-आपको बहुगुणित करता और तीव्र बनाता रहेगा जब-तक कि सकल ब्रह्मामाण्ड 'परम' पूर्ण अवतार नहीं बन जाता।

❧

अगर तुम्हारे अन्दर बलवान और सचेतन संकल्प-शक्ति है और तुम्हारा संकल्प चैत्य पुरुष के इर्द-गिर्द व्यवस्थित है तो तुम स्वाधीनता का रस पा सकते हो। अन्यथा तुम सभी बाहरी प्रभावों के दास रहते हो।

श्रीमाँ

सावित्री के विषय में माताजी

(एक संकलन)

साधक: माँ, अज्ञान और पीड़ा से दुख आता है किन्तु दुःख और पीड़ा की प्रकृति किस प्रकार की है जिसे दिव्य जननी- वह दिव्य जननी जो सावित्री में हैं, अपने बच्चों के लिए अनुभव करती हैं?

माँ : यह इसलिए होता है कि वह उसकी प्रकृति में सहयोग देती हैं। वह उनकी प्रकृति में सहयोग देने के लिए धरती पर अवतरित होती हैं। क्योंकि यदि वह उसकी प्रकृति में सहयोग न देतीं तो उसका नेतृत्व कर उन्हें आगे नहीं ले जा सकतीं। यदि वह अपनी सर्वोच्च ज्ञान और चेतना में, जहाँ कोई पीड़ा नहीं है, अपने परम ज्ञान और चेतना में बनी रहतीं तो वह मानव-सत्ताओं के साथ कोई सम्पर्क नहीं रख पातीं और यह इसीलिए है कि उनके साथ सम्पर्क में आने के लिए उन्हें मानव चेतना और रूप धारण करना पड़ता है, यह उनके सम्पर्क में आने की सामर्थ्य के लिये है। बस, वह केवल इसे भूलतीं नहीं हैं। उन्होंने उनकी चेतना को ग्रहण किया है लेकिन वह अपनी वास्तविक, सर्वोच्च-चेतना के सम्पर्क में बनी रहती हैं। और इस प्रकार दोनों को संयुक्त कर वह उनकी, जो उस दूसरी चेतना में हैं उनकी प्रगति करा सकती हैं, उनको प्रगति करने में मदद कर सकती हैं, उसकी प्रगति करा सकती हैं। परन्तु यदि वह उसकी चेतना को न अपनातीं, यदि वह उनके दुःख के साथ कष्ट न उठातीं तो वह उनकी सहायता न कर पातीं। उनका कष्ट अज्ञान का नहीं हैः उनका यह कष्ट तादात्म्य में से होकर आता है। ऐसा इस कारण होता है क्योंकि उन्होंने उनके जैसे प्रकम्पनों को ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। यदि वह उनके सम्पर्क के अंदर नहीं आतीं तब माताजी तनिक भी अनुभव में नहीं आतीं अथवा कोई उनकी कान्ति को सह नहीं पाता.... यह सभी प्रकार के धर्मों में, सभी रूपों में कहा जा चुका है और प्रायः ही उन्होंने भागवत बलिदान की चर्चा की है,- लेकिन यह एक विशेष दृष्टिकोण से सच है। यह एक स्वैचिछक बलिदान है किन्तु सच यह है कि बाहरी जगत के अज्ञान को स्वीकार करने के लिए यह एक पूर्ण चेतना, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शक्ति की स्थिति का त्याग है जिससे कि इसे अज्ञान से बाहर निकाला जा सके। यदि यह स्थिति स्वीकार न की जाती तब इस जगत के साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं होता और ना कोई सम्बन्ध सम्भव होता। और यही अवतारों का कारण है, अन्यथा इन अवतारों की कोई

आवश्यकता ना होती। यदि दिव्य चेतना और दिव्य शक्ति अपने स्थान या अपनी पूर्णता की स्थिति से सीधे कार्य कर पातीं यदि वह सीधे जड़ –पदार्थ पर कार्य करके इसे रूपान्तरित कर पातीं तब मनुष्य के समान उन्हें देह-धारण की कोई आवश्यकता ना होती। सत्य के लोक से पूर्ण-चेतना के साथ और चेतना के ऊपर क्रिया करना ही पर्याप्त होता। वस्तुतः शायद ऐसा होता है परन्तु इतनी मन्द-गति से कि जब विश्व की प्रगति में इसे और अधिक गति से आगे बढ़ाने के लिए का प्रयास किया जाता है, तब सचमुच में मानव प्रकृति को साथ लेना आवश्यक हो जाता है। मानव देह धारण करने पर मानव-प्रकृति को अंशतः धारण करने का उन्हें अनुग्रह करना होता है। केवल अपनी चेतना खोने और सत्य के साथ सम्पर्क खोने के स्थान पर वह इस चेतना को बनाये रखती हैं और दोनों को संयुक्त करके ही कोई ठीक इस प्रकार के रूपान्तर की कीमियागरी का सृजन कर सकता है। परन्तु यदि कोई तत्व का स्पर्श नहीं करता, उसके लिए कोई कुछ नहीं कर सकता।

साधक: सावित्री को जो वह करने जा रही थी, उसका पूर्वाभास था ?

माता जी: उसने तो ऐसा ही कहा था। क्या तुमने इसे नहीं पढ़ा? उससे यह भी कहा गया था कि वह एकाकी रह जायेगी। और उसने कहा था-"मैं एकाकी रह जाने को तैयार हूँ" क्या तुमने नहीं पढ़ा? यह उस सर्ग में है जिसका गत वर्ष 1 दिसम्बर 1953 को स्कूल के वार्षिक समारोह में पाठ किया गया था। यह सब जगह कहा गया है कि वह जो कुछ होने वाला है सब जानती थी। यह स्पष्ट लिखा हुआ है। वास्तव में प्रत्येक से वह स्पष्ट कहती है कि जिसकी तुम्हें आवश्यकता है वह मैं तुम्हारे पास लाऊँगी। अतः वह इसे जानती है। अन्यथा वह ऐसा नहीं कहती। यदि वह इसे नहीं जानती तो वह कैसे यह कह सकती थी ?

साधक: सावित्री में दुःखों की माता कहती है "शायद जब जगत अन्तिम नींद में डूब जाता है, मैं भी मूक सनातन शान्ति में सो सकती हूँ"।

माता जी: आह !...वह ?... वह, मानव चेतना है। यह मानव चेतना की सोच है कि जब सब दुःख समाप्त हो जायेगा, -"अच्छा, तब मैं सो जाऊँगा।" वास्तव में यहाँ श्री अरविन्द इसी के बारे में कहते हैं। जब परम शान्ति के लिए यह अभीप्सा होती है, व्यक्ति यह महसूस करता है कि यदि प्रलय हो जाये और जगत अदृश्य हो जाये, हाँ, कम से कम तब शान्ति होगी। किन्तु, यह वाक्यांश अपने आप में विरोधाभासी है, क्योंकि यदि प्रलय हो जायेगी तो उसके बाद कुछ भी नहीं बचेगा! अनुभव करने के लिए शान्ति भी नहीं रहेगी किन्तु यह मानव चेतना के विरोधाभासों में से केवल एक है, "जबतक

जगत है और कष्ट है, मैं जगत के साथ दुःख झेलूँगा। किन्तु, यदि कभी भी जगत शान्ति में प्रवेश करता है, अ-सत्ता की शान्ति में विलुप्त होता है, तब मैं भी विश्राम करूँगा।" यह कहने की काव्यमय शैली है कि जब तक जगत में है, मैं कष्ट जगत के साथ कष्ट झेलूंगा। केवल तभी, जब इसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा, तब वह मेरे लिए भी समाप्त हो जायेगा।

साधक: तब दुखों की माता क्या करेगी? क्या कर सकती है?

माता जी: वह आनन्द की माता बन जायेगी। सावित्री मातृ-चेतना का प्रतिनिधित्व करती है; क्या नहीं?

साधक: हाँ, और सत्यवान किसका प्रतिनिधित्व करता है?

माता जी: वह अवतार है। परात्पर का अवतार है। अमरत्व तथा मृत्युरहित-स्थिति के बीच अन्तर है। सावित्री में श्री अरविन्द ने इसका भली-भाँति वर्णन किया है।

भौतिक शरीर के लिए भविष्य में मृत्युरहित-स्थिति कैसी हो सकती है? जो परिकल्पना की जा सकती है, वह सतत पुनर्जन्म है। नमनीयता के अभाव में और वैश्व गति के अनुकूल बनने की शरीर की असमर्थता के कारण पुनः लड़खड़ा कर अलग जा गिरने के स्थान पर शरीर जैसा था, 'भविष्य की ओर' विनष्ट हो जाता है।एक घटक-तत्व ऐसा होता है जो नियत रहता हैः क्योंकि प्रत्येक वर्ग के अणु के लिए, घटक-तत्वों का आन्तरिक संगठन जो उनके मूल-पदार्थ में भिन्नता सृजित करता है भिन्न होता है। कदाचित इसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के कोशाणुओं को संगठित करने की एक भिन्न विधि होती है, और यह भिन्न विधि ही है जो समस्त बाह्य परिवर्तनों के दौरान प्रगट होती रहती है। बाकी सब नष्ट हो जाता है और पुनर्निर्मित होता है परन्तु, यह घटक पीछे की ओर मृत्यु में ढह जाने के स्थान पर दिव्य-सत्य में पुनर्निर्मित होने के लिए आगे धकेल दिया जाता है। किन्तु उसके लिए शरीर, शारीरिक-चेतना के लिए पहले यह जरूरी है कि अपने को विस्तारित करना सीखे। यह अपरिहार्य है, क्योंकि अन्यथा सभी कोषाणु अतिमानसिक-प्रकाश के दबाव में एक प्रकार का उबलता हुआ दरिया बन जाते हैं।

साधारणत: होता यह है कि जब शरीर अभीप्सा की तीव्रता या प्रेम के हर्षातिरेक की पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तब वह इसे अपने में समाहित करने में असमर्थ रहता है। यह चपटा, गतिहीन बन जाता है। यह पीछे गिर पड़ता है। चीजें नीचे, निथर जाती हैं, तुम एक नवीन-प्रकम्पन से भर जाते हो, लेकिन तब प्रत्येक चीज अपने क्रम में वापस आ जाती हैं। इसलिए, शरीर की जर्जर अवस्था में वापस गिरे बिना दिव्य सत्य की आरोही-गति के साथ हमेशा आगे बढ़ते रहने के

लिए, तुम्हें अतिमानसिक-शक्ति की तीव्रता को निर्भीकता पूर्वक सहना सीखने के लिए, अपने को विस्तारित करना होगा।

वही है जब श्री अरविन्द एक असहनीय आनन्द की बात करते हैं तब उनका तात्पर्य होता है कि यह असहनीय नहीं है: यह एक अचल-स्थिर आनन्द है।

सावित्री में श्री अरविन्द की एक पंक्ति है जो इसे बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त करती है। अपने अहं को मिटा देना जिससे कि केवल परम-प्रभु रह सकें। और इस तरह के अनेक,... अनेक अनुभव हैं। यह केवल एक छोटा-सा, एक बहुत छोटा आरम्भ है। और यह एक विशेष रूप में नये पड़ाव का संकेत था। चार वर्ष बीत गये, और अब चार वर्ष आने वाले हैं। हर चीज, इस शरीर पर, इसे तैयार करने के लिए केन्द्रित है... हर चीज इस पर केंद्रित है, -प्रकृति, योग का स्वामी, वह परम, हर चीज... इसलिए जब यह पूरा हो जाये (तब) इस सब के बारे में बोलना सचमुच रोचक होगा, इसके पहले नहीं। परन्तु हो सकता है कि यह कभी पूरा न हो, आखिरकार, यह एक छोटा-सा आरम्भ है, बहुत छोटा। '

केवल एक चीज है जो तुम कर सकते हो, जितना सम्भव हो सके अपने अहं को विलुप्त कर मिटा दो। यदि तुम अपने अहं को पूर्ण रूप से विलुप्त कर मिटा सको, तब यह अनुभव पूर्ण हो जाता है। और यदि तुम्हारे (अहं की) अनुपस्थिति सतत् बनी रह सके, तब अनुभव सतत् बना रहेगा, किन्तु फिर भी बहुत दूर...।

साधक: मधुर माँ, श्री अरविन्द की पुस्तकें, जब वे कठिन हों और जब मैं समझ न पाऊँ, किस मनोभाव से पढ़नी चाहिये? उदाहरण के लिए- सावित्री, दिव्य जीवन....।

माता जी: एक बार में थोड़ा-सा पढ़ो, बार - बार पढ़ो, जब तक समझ में न आ जाये।

जब सृष्टि के नकारात्मक भागों और मृत्यु को विजित करने के प्रयास का एक समय आता है (जैसा कि सावित्री के अन्त में)... और जब तुम उसे विजित कर लेते हो तब तुम ऊपर होते हो।

और तब, यदि इन सब चीजों पर नजर डालो, उन चीजों पर भी जो दिव्यता के सबसे अधिक विरोधी मालूम पड़ें, यहाँ तक कि क्रूर-कृत्य, क्रूर-कर्म में सुख के लिए किये गए कार्यों में भी, तुम उपस्थिति देखते हो, वह उपस्थिति जो उनके प्रभावों को मिटा देती है और यह नितान्त, अद्भुत है!

सावित्री में इसकी बहुत अच्छी तरह व्याख्या की गयी है! इन सारी चीजों के अपने विधान हैं, अपनी परम्पराएँ हैं (और सच कहा जाये तो उनके अधिकारों में कुछ भी परिवर्तन लाने के लिए वास्तविक रूप में एक अजेय शक्ति की आवश्यकता है, क्योंकि उनके पास अधिकार हैं जिन्हें वे

विधान कहते हैं)... श्री अरविन्द इसकी बहुत अच्छी तरह व्याख्या करते हैं, जब मृत्यु के अंदर सावित्री, सत्यवान का पीछा करती हुई यम से तर्क करती है, वह कहता है,

"यह विधान है, और किसे विधान को बदलने का अधिकार है?" और तब अन्त में यह अद्भुत अनुच्छेद आता है जहाँ वह उत्तर देती है, "मेरे प्रभु इसे परिवर्तित कर सकते हैं और, मेरे प्रभु, -प्रेम के प्रभु हैं।" ओह,... कितना तेजपूर्ण! और बलपूर्वक इसकी आवृत्ति से वह (यम), झुक जाता है... इसी प्रकार वह हर चीज का उत्तर देती है।

❧

हम एक ऐसी विशेष स्थिति में हैं जैसी पहले कभी नहीं आयी। हम उस बेला में उपस्थित हैं जब नया जगत् जन्म ले रहा है, पर जो अभी बहुत छोटा है और दुर्बल है – जो अभी पहचाना नहीं गया, अनुभव नहीं किया गया, पर यह मौजूद है और बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है तथा अपने परिणाम के बारे में सुनिश्चित है। लेकिन इस तक पहुँचने वाला पथ बिल्कुल नया पथ है जिस पर अब तक कोई चला। यह आरम्भ है, एक विश्वव्यापी आरम्भ, एक बिल्कुल अप्रत्याशित और अकल्पित अभियान।

कुछ लोगों को अभियान प्रिय होते हैं... उन्हें मैं इस महान अभियान के लिये आमंत्रित करती हूँ।

श्रीमाँ

अतिथि सत्कार

अनुवादिका देवी करुणामयी

एक बार की बात है कि मैं ऋषिकेश के घने जंगलों में अपना रास्ता भूल गया। पूर्णिमा की रात थी। धवल चन्द्रमा की उज्जवल किरणें घने जंगल के पेडों की डालियों व पत्तियों को भेद कर धरती पर झिलमिल-झिलमिल झाँक रही थीं। मैं चलते-चलते लताओं के झुण्डों के पास आ पहुँचा जो मुझे लगा कि अपनी गोद में सो जाने का निमंत्रण दे रहे थे। क्योंकि में थका-हारा तो था ही मुझे यह जंगली- बिछौना किसी भी मानव-रचित बिस्तर से कहीं ज़्यादा आराम-देह लगा।

जल्दी ही मैं स्वप्न-विहीन शांति पूर्ण निद्रा की गोद में लीन हो गया। जब सुबह सबेरे मैं उठा तो लो देखो ! मेरी दृष्टि पड़ी एक वानर-बन्धु पर, जो बड़े ध्यान से मेरी ओर टकटकी लगाए देख रहा था। मानो मेरे अंतरतम के भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहा हो। मुझे भी अपने विचार उस तक पहुँचाने की प्रेरणा हुई और इच्छा हुई कि उस तक यह संदेश संप्रेषित करूँ-पहुँचाऊँ:

"हे मेरे वन- बन्धु ! मैं तो तुम्हारा इस समय अतिथि हूँ। तुम अब उस स्थिति में हो कि यदि तुम चाहो तो मेरी भूंख का शमन कर सकते हो।" देखा कि तत्काल वह मेरी नज़रों से ओझल हो गया और पंद्रह मिनट से भी कम समय में विविध प्रकार के फलों को लेकर वापस आ गया और उन्हें एक साफ़-सुथरे हरे स्थान पर मेरे सामने रख दिया। फिर मुझे बड़े प्रभावशाली व भावपूर्ण ढंग से अपनी आँखों की भाषा के द्वारा जिनमें भक्ति भावना छलक रही थी, नम्रता, ध्यान, संलग्नता व अतिथ्य सत्कार भरा था, खाने का निमंत्रण दिया।

अपनी आदत के अनुसार जिसमें कि मैं अपने को देने वाले को उसके दिये हुए पदार्थों में से चुनकर अच्छा सा भाग पहले उसे ही दे दिया करता हूँ मैंने उस ढेर में से उठाकर कुछ चुने हुए बढ़िया फल उसको थमा दिये जिन्हें उसनें बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। परन्तु उसने अपना भाग खाया तभी जब मैंने खा लिया था।

मेरा मनो-विनोद यहीं पर समाप्त नहीं हुआ। उसने मुझको अपने अत्यधिक मनोरंजक नृत्य व आनंदित भंगिमा के द्वारा बराबर लुभाये रखा। मैं तो उस बंदर के (instinct) जैव-भाव पर चकित था जिसने सिखाया कि किसी दुःखी व्यक्ति की उसके दुःख-कष्ट या दर्द में किस प्रकार

देखभाल व सत्कार करना चाहिये। इधर मनुष्य की तो यह हाल हो गयी है कि उसको इस दिशा में जंगली जानवरों से बहुत कुछ सीखना है।

यदि में एक बन्दर तक में उसका जैव-गत भाव (instinct) उसके कर्त्तव्य की पुकार के प्रति जगा सका था तो मुझे सहसा लगा कि अरे मनुष्यों में तो मैं इससे बहुत अधिक कर सकता हूँ और शान्ति का संदेश दूर और पास सब कहीं पहुँचा सकूँगा!

'अमृतानन्दम्' से साभार

❧

श्रीमाँ का भारत आगमन

सुरेन्द्र चन्द्र त्यागी

बाह्य रूप से साधारण-सी दिखने वाली घटना में कितने गंभीर और विराट् अर्थ अन्तर्निहित होते हैं, इसका अनुमान सामान्य बुद्धि नहीं कर सकती। ऐसी ही एक घटना 29 मार्च 1914 को घटी थी। चेतना के विकास के इतिहास में एक अमूर्त पूर्व घटना थी यह। विकास-यात्रा में सहयात्री बनकर मानवीय से अतिमानवीय चेतना की ओर बढ़ चलने का यह संकल्प-दिवस था। यह घटना तब घटी थी जब अरविन्द 'श्री अरविन्द' नहीं हुये थे और ना 'मीरा' ही 'श्रीमाँ' बनी थीं। इस घटना के लगभग सोलह वर्ष बाद श्रीमाँ ने कहा था-

"जब मैं पहली बार पांडिचेरी में श्री अरविन्द से मिली, तब मैं गहरी एकाग्रता की स्थिति में थी, घटनाओं को 'अतिमानस' में देख रही थी- उन घटनाओं को जो होनी थीं लेकिन किसी कारण प्रकट नहीं हो रही थीं।"

मैंने जो कुछ देखा था, वह श्री अरविन्द को बतलाया और पूछा कि क्या ये प्रकट होंगी। उन्होंने केवल यह कहा- 'हाँ!' और मैंने तुरन्त ही देखा कि अतिमानस ने धरती का स्पर्श कर लिया है और उसका कार्यान्वयन शुरू हो गया है। यही वह समय था जब मैंने पहली बार सत्य को वास्तविक बनाने की शक्ति को साक्षात् देखा था।

पॉल रिचर्ड अप्रैल 1910 में भारत की यात्रा कर चुके थे। तब वह राजनीतिक कार्य से आये थे- एक प्रत्याशी का प्रचार करने। उसी वर्ष 4 अप्रैल को श्री अरविन्द पांडिचेरी पहुँचे थे। पॉल रिचर्ड गुह्य विद्या और आध्यात्मिकता में रूचि रखते थे और मैक्स थियों के सम्पर्क में रह चुके थे। पांडिचेरी में उन्होंने अपने परिचितों के बीच किसी योगी से भेंट करने की इच्छा जताई। इसी सिलसिले में श्री अरविन्द का नाम आया जो हाल में ही पांडिचेरी आये थे। उन दिनों श्री अरविन्द गिने-चुने व्यक्तियों से ही मिलते थे। उन्हीं परिचितों में से एक ने पूछा कि एक फ्रांसीसी व्यक्ति मिलना चाहते हैं। श्री अरविन्द ने मिलने की स्वीकृति दे दी। यह भेंट लगातार दो दिन हुई- प्रतिदिन दो-तीन घण्टे। दोनों के बीच क्या बातचीत हुई, यह विवरण उपलब्ध नहीं होता। कई लेखकों ने लिखा है कि श्रीमाँ ने कोई प्रतीक-चिन्ह पॉल रिचर्ड के द्वारा भेजा था और किसी गुह्यवेत्ता से इसका अर्थ पूछने को कहा था। श्री अरविन्द ने इस प्रतीक की व्याख्या समझाई थी। लेकिन श्रीमाँ ने किसी बातचीत में

अनेक वर्ष बाद यह कहा था कि उन्होंने कोई प्रतीक-चिह्न नहीं भेजा था, पॉल रिचर्ड ने स्वयं ही कुछ पूछा होगा।

उस वर्ष के अंत तक पॉल रिचर्ड वापस लौट गये। वह श्री अरविन्द का एक धुंधला-सा फोटो साथ ले गये थे। भारत से लौट जाने के बाद पॉल रिचर्ड से श्री अरविन्द का पत्राचार भी हुआ था जिससे दोनों के निरन्तर सम्पर्क का पता लगता है। मीरा और पॉल रिचर्ड का विवाह 5 मई, 1911 को हुआ था। (12 जुलाई 1911) पॉल रिचर्ड को श्री अरविन्द ने लिखा था। "मुझे ऐसे शरण-स्थल की आवश्यकता है जहाँ मैं अपने योग को अविवादित रूप से पूरा कर सकूँ और अपने चारों ओर के दूसरे व्यक्तियों का निर्माण कर सकूँ। मुझे लगता है कि पांडिचेरी ही वह स्थान है जो परा शक्तियों द्वारा निर्धारित किया गया है लेकिन आप जानते हैं कि भौतिक स्तर पर इस प्रयोजन हेतु आवश्यक निर्माण करने के लिये कितने अधिक प्रयास की आवश्यकता है।..... मैं भौतिक स्तर पर आध्यात्मिक को उतारने के लिये आवश्यक शक्तियों का विकास कर रहा हूँ।.... मैं बहुत स्पष्टतापूर्वक जो महसूस कर रहा हूँ, वह यह कि मेरे योग का प्रमुख उद्देश्य है पूरी तरह और समग्रतया भ्रम एवं अक्षमता के मूल कारण को हटा देना – भ्रम के स्रोत को इसलिये कि मैं मनुष्यों को जिस सत्य के दर्शन कराऊँगा, वह परिपूर्ण हो सके और अक्षमता के स्रोत को इसलिये कि जगत् के परिवर्तन का कार्य, जहाँ तक मुझे इसमें सहायक होना है, पूर्ण रूप से विजयी एवं अप्रतिरोध्य हो सके।"

पॉल रिचर्ड के भारत आने का संयोग फिर बना 1914 में। लेकिन इस बार की यात्रा का कारण किसी दूसरे प्रत्याशी का प्रचार करना नहीं था बल्कि स्वयं प्रत्याशी बनकर चुनाव लड़ना था। इस बार अकेले भी नहीं आना था, मीरा को भी साथ लाना था। पहली और दूसरी यात्रा के दौरान क्या-क्या घटा, वह भी एक सूक्ष्म निरीक्षण और अध्ययन का विषय है। मीरा ने आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के बीच जो विचार-विमर्श तब किया था, वह 'वर्ड्स ऑफ लॉन्ग अगो' तथा 'प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स' में मिल जाता है। ऊपरी तौर पर कारण चाहे राजनीतिक रहा हो लेकिन श्री अरविन्द के साथ पॉल रिचर्ड की घनिष्ठता बढ़ जाने से भारत के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण कम महत्वपूर्ण कारण नहीं था। इस घनिष्ठता का प्रमाण अप्रैल 1914 में मोतीलाल राय को लिखे श्री अरविन्द के एक पत्र में मिलता है- "मैं आज एम0 पॉल रिचर्ड का चुनावी घोषणा-पत्र भेज रहा हूँ। वह फ्रेंच चैम्बर के लिये होने वाले आगामी चुनाव के प्रत्याशियों में एक हैं। यह चुनाव हमारे लिये कुछ महत्व रखता है क्योंकि दो प्रत्याशी ऐसे हैं जो बहुत हद तक हमारे विचारों का प्रतिनिधित्व करते

हैं- लापोर्टे और रिचर्ड। रिचर्ड मेरे व्यक्तिगत मित्र और योग में मेरे बंधु ही नहीं हैं, बल्कि वह मेरी तरह और अपने ही ढंग से विश्व के पुनर्उद्धार का कार्य कर रहे हैं जिससे वर्तमान यूरोपीय सभ्यता आध्यात्मिक सभ्यता का स्थान लेगी।..... वह और श्रीमती रिचर्ड उन यूरोपीय योगियों के विरल उदाहरण हैं जो थियोसोफिकल और अन्य मार्गों की ओर नहीं गये हैं। मैं पिछले चार वर्षों से उनके साथ सांसारिक और आध्यात्मिक पत्राचार करता रहा हूँ।..... यदि रिचर्ड फ्रेंच इण्डिया के डिप्टी बन जायें तो इसका व्यावहारिक अर्थ यह होगा कि मैं ही फ्रेंच इण्डिया का डिप्टी बन जाऊँगा।" (कम्प्लीट वर्क्स ऑफ श्री अरविन्द, खंड 36, पृष्ठ 195)

भारत के बारे में और विशेषतः उसकी चिन्तनधारा के बारे में मीरा को जानकारी दो ग्रन्थों के माध्यम से मिली थी- 'गीता' और स्वामी विवेकानन्द का 'राजयोग '। भारत की यात्रा का संयोग बना तो मीरा की प्रसनन्ता स्वाभाविक थी। उन्होंने 3 मार्च 1914 को अपनी डायरी में लिखा- "जैसे-जैसे प्रस्थान का दिन निकट आ रहा है, मैं एक प्रकार के आत्म-सम्पर्क में प्रवेश कर रही हूँ। मैं एक स्नेहशील गांभीर्य के साथ अपने चारों ओर की उन हज़ारों नगण्य वस्तुओं की ओर मुड़ रही हूँ जिन्होंने इतने वर्षों से मौन रहकर विश्वसनीय मित्रों की अपनी भूमिका निभाई है। मैं कृतज्ञतापूर्वक उनको धन्यवाद देती हूँ जो हमारे जीवन के बाह्य पक्ष को मनोहरता प्रदान करने में समर्थ हुई हैं; मैं चाहती हूँ कि यदि हमें छोड़कर कितने भी समय के लिये दूसरों के हाथों में जाना ही उनकी नियति है तो वे हाथ उनके प्रति कोमल रहें और उनके प्रति देय उस सम्मान को समझें जिसे तेरा दिव्य प्रेम, हे प्रभु, अव्यवस्था की अंधकारपूर्ण अचेतनता से बाहर ले आया है।

फिर मैं भविष्य की ओर मुड़ती हूँ और मेरी दृष्टि और अधिक गंभीर हो उठती है। हमारे लिये उसने अपने भंडार में क्या सुरक्षित रखा है, यह मैं नहीं जानती और ना जानना चाहती हूँ; बाह्य परिस्थितयों का कतई महत्व नहीं है; मैं केवल यह चाहती हूँ कि यह हमारे लिये एक नूतन आंतरिक युग का प्रारंभ हो जिससे हम भौतिक वस्तुओं से अधिक अनासक्त रहते हुये तेरी नियम-व्यवस्था के प्रति और अधिक एकनिष्ठ होकर समर्पण कर सकें; चाहती हूँ कि भविष्य एक महत्तर प्रकाश का, महत्तर प्रेम का, तेरे प्रति और अधिक परिपूर्ण का काल हो।"

इसमें दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं- भौतिक वस्तुओं के प्रति दृष्टिकोण और भविष्य के प्रति एकनिष्ठ एवं परिपूर्ण समर्पण का भाव। एक बार श्री अरविन्द आश्रम के साधकों को श्रीमाँ ने कहा था- "व्यक्ति जिन भौतिक वस्तुओं का प्रयोग

करता है, उनकी परवाह ना करना अविवेक और अज्ञान का लक्षण है।

यदि तुम किसी भी भौतिक वस्तु का, चाहे वह कुछ भी हो, ध्यान नहीं रखते तो उसका इस्तेमाल करने का तुम्हें अधिकार नहीं... क्योंकि यह दिव्य चेतना के कुछ अंश को प्रकट करती है।"

अपने संस्मरणों में नलिनीकांत गुप्त ने लिखा है कि श्रीमाँ ने हमें "अपनी वस्तुओं का ध्यानपूर्वक इस्तेमाल करना सिखाया।... श्रीमाँ वस्तुओं का प्रयोग केवल ध्यानपूर्वक ही नहीं बल्कि प्रेम और स्नेह से करती हैं। क्योंकि उनके लिये भौतिक वस्तुएँ केवल निर्जीव पदार्थ नहीं हैं, मात्र प्राणहीन साधन नहीं हैं। वे अपने जीवन से सम्पन्न हैं, उनकी अपनी चेतना है और हरेक वस्तु की अपनी विशिष्टता और स्वभाव है।"

पेरिस से प्रस्थान कर मीरा और पॉल रिचर्ड 6 मार्च, 1914 को जेनेव पहुँचे। वहाँ से ट्रेन द्वारा मार्सेलिज गये और 7 मार्च को उन्होंने जापानी जहाज़ 'कागामारु' से अपनी यात्रा प्रारंभ की। 9 मार्च को मीरा ने इस जहाज के बारे में अपनी प्रार्थना में लिखा- "हे प्रभु, मेरे प्रिय स्वामी, मैं इस नाव पर लगातार यह सब अनुभव कर रही हूँ। यह नाव मुझे शांति के अद्भुत आवास जैसी, एक मंदिर जैसी लग रही है जो तेरे सम्मान में अवचेतनात्मक निष्क्रियता की लहरों पर चल रही जिसे हमें जीतना है और तेरी दिव्य उपस्थिति की चेतना में जागना है।" (प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स, पृष्ठ 99)

'कागामारु' जहाज़ काहिरा में रुका और वहाँ मीरा को एक म्यूजियम देखने का अवसर मिला। 13 मार्च को मीरा ने अपनी प्रार्थना में लिखा- "प्रेम के प्रिय स्वामी! कृपा कर कि मेरी समस्त चेतना तुझमें एकाग्र हो जाये जिससे मैं केवल प्रेम और प्रकाश द्वारा जीवन जी सकूँ और वह प्रेम एवं प्रकाश मेरे द्वारा प्रसारित हो सके तथा हमारी यात्रा में सबके भीतर जाग सके। हमारी यह भौतिक यात्रा हमारे कर्म के प्रतीक की तरह हो और हम सर्वत्र प्रकाश एवं प्रेम के पथ के रूप में तेरा संकेत-चिह्न छोड़ जायें।"

फिर 28 मार्च को उन्होंने लिखा- "अपने प्रस्थान के समय से प्रतिदिन ही हम अधिकाधिक सब कार्यों में तेरा दिव्य हस्तक्षेप देख रहे हैं, सर्वत्र तेरी नियम-व्यवस्था अभिव्यक्त हो रही है और मैं अपेक्षा करती हूँ कि मेरा आंतरिक विश्वास यह अनुभव करे कि यह सब पूर्णरूपेण स्वाभाविक है जिससे मैं एक आश्चर्य के बाद दूसरा आश्चर्य अनुभव ना करती रहूँ।"

अनेक वर्षों बाद 23 मई 1956 को श्रीमाँ ने एक बातचीत में इस यात्रा के दौरान घटी एक घटना की चर्चा की थी। जहाज पर ही कोई धार्मिक आयोजन हुआ। सब यात्री सज-धजकर उसमें शामिल हुये। आयोजन की समाप्ति पर सब थोड़ी देर बाद बार में

पहुँचे, शराब पी और ताश खेलने लग गये। धार्मिक अनुष्ठान को सब भूल गये। वह पादरी, जिसने आयोजन सम्पन्न कराया था, श्रीमाँ के पास आया और पूछा कि आप आयोजन में क्यों नहीं पहुँची? श्रीमाँ ने कहा- 'मुझे क्षमा करें। मैं धर्म में विश्वास नहीं करती।' तो क्या आप भौतिकवादी है? उसने पूछा। श्रीमाँ ने कहा- 'कतई नहीं।' पादरी बोला- फिर? पादरी ने बहुत आग्रह किया तो श्रीमाँ ने कहा- 'समझने का प्रयास करें। मुझे नहीं लगता कि आप सत्यनिष्ठ हैं- ना आप और ना आपके विश्वासीगण। आप सब वहाँ एक सामाजिक कर्त्तव्य पूरा करने गये थे- एक सामाजिक प्रथा निभाने करना चाहते थे।'

यात्रा के दौरान लिखी प्रार्थनाओं को देखें तो श्रीमाँ की मनस्थिति का तो ज्ञान होता ही है, उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों की भी जानकारी मिलती है।

'कागामारु' जहाज 27 मार्च को कोलम्बो पहुँचा। वहाँ मीरा और पॉल रिचर्ड ने एक बौद्ध मठ देखा। वहाँ से धनुष्कोटि गये और ट्रेन से 28 मार्च को प्रस्थान कर विलुपुरम पहुँचे। वहाँ से पांडिचेरी के लिये ट्रेन बदलकर 29 मार्च को प्रातः पांडिचेरी पहुँच गये। वहाँ वे सफरेन स्ट्रीट पर होटल द यूरोप के कमरे में ठहरे।

श्री अरविन्द दिसम्बर 1913 में अपने गिने-चुने शिष्यों के साथ मिशन स्ट्रीट के छोटे-से आवास को छोड़कर नये बड़े आवास 41, रयू फ्रैंक मार्टिन में आ गये थे, जो अब गेस्ट हाउस के नाम से जाना जाता है। अमृता ने इस नये आवास के बारे में लिखा था- "इस भवन के भीतरी भाग में, बरामदे के एक किनारे पर एक चौड़ा ज़ीना था जो पहली मंजिल तक ले जाता था।.... यह घर बड़ा था लेकिन सुनसान लगता था। ऊपरी मंजिल में बड़े कमरे थे और एक विस्तृत बरामदा था।.... पश्चिम के कोने में एक बड़ा कक्ष था जिससे लगा हुआ एक और कमरा था और फिर था एक खुला छज्जा। बड़ा कक्ष सामने का कमरा और छज्जा- इन तीनों को घर का सर्वोत्तम भाग समझा गया और इनको श्री अरविन्द के लिये अलग कर दिया गया।"

इस मकान को रहने लायक बनाने के लिये हर संभव प्रयास किया गया। बिजली के प्रकाश की व्यवस्था की गई, कुछ फर्नीचर जुटाया गया। अमृता ने लिखा है कि इसी समय यह खबर फैली कि दो यूरोपियनों ने श्री अरविन्द को गुरु मान लिया है और फ्रांस के उच्च सांस्कृतिक समाज से दो व्यक्ति योग-साधना के लिये आने वाले हैं। तब शिष्यों में उत्सुकता स्वाभाविक ही थी। इसी घर में श्री अरविन्द और श्रीमाँ की प्रथम साक्षात् भेंट हुई थी।

श्रीमाँ ने इस भेंट के बारे में कहा है- "मुझमें कोई चीज़ थी जो श्री अरविन्द से

पहली बार नितान्त अकेले ही मिलना चाहती थीं। रिचर्ड श्री अरविन्द से मिलने सुबह के समय गये थे और मुझे तीसरे पहर का समय मिला था। श्री अरविन्द पुराने गेस्ट हाउस में रह रहे थे। मैं ज़ीने पर चढ़ी और वह वहाँ पर खड़े हुये थे- सीढ़ियों से ऊपर मेरी प्रतीक्षा करते हुये। ठीक मेरा विज़न था यह! वही पहनावा था, वही स्थिति थी और वही रूपरेखा। उनका सिर ऊपर उठा हुआ था। उन्होंने अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया और मैंने उनकी आँखों में देखा कि यह तो 'वही' थे।"

ये ही क्षण थे जब श्री अरविन्द ने मीरा के व्यक्तित्व में उन भगवती माता की झलक देखी थी जिसका वर्णन 'माता' पुस्तक में किया है। 'सावित्री' की इन पंक्तियों में क्या इसी भेंट की झलक नहीं है?

Here first she met on the uncertain earth
The one for whom her heart had come so far
Attracted as in heaven star by star,
They wondered at each other and rejoiced
And wove affinity in a silent gaze.
A moment passed that was eternity's ray,
An hour began the matrix of new Time.

के0 डी0 सेठना ने इस भेंट के बारे में लिखा है कि "श्री अरविन्द से भेंट के पूर्व श्रीमाँ के पास जगत् के उत्थान के लिये हर तरह के सशक्त विचार थे- कला के बारे में, समाज और धर्म के बारे में। **श्री अरविन्द के दर्शन कर उन्होंने सभी मानसिक ढाँचों पर पूर्ण विराम लगाने की अभीप्सा की।** उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा, ना श्री अरविन्द ने कुछ बोला। वह उनके चरणों में बैठ गईं और अपनी आँखें मूँद ली- उनके प्रति अपने मन को खुला रखते हुये थोड़ी देर बाद वहाँ, ऊपर से, अनन्त शांति का अवतरण हुआ जो श्रीमाँ के मन में बस गई। सब कुछ समाप्त हो गया, वे सारे सुन्दर और महान् विचार गायब हो गये और वहाँ विद्यमान थी मात्र मन से परे के सत्य की शून्य निर्विकार प्रतीक्षा।"

इस भेंट के बाद श्री अरविन्द ने अपनी डायरी में उसी दिन (29.3.1914) केवल यह लिखा- "आज की अपराह्न और शाम रिचर्ड से भेंट, भारती से मुलाकात और ऋगवेद 11, 23 और 24 के अनुवाद में व्यतीत हुई।" श्री अरविन्द से भेंट के बाद मीरा को जो बोध हुआ, वह उनकी अगले ही दिन 30 मार्च की प्रार्थना में प्रकट है- "धीरे-धीरे क्षितिज सुस्पष्ट हो रहा है, पथ

सुनिश्चित हो रहा हैं और हम अधिकाधिक महान् निश्चिति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

इसका महत्व नगण्य है कि हज़ारों प्राणी अत्यन्त घने अज्ञान में डूबे हुये हैं। कल हम जिनसे मिले, वह धरती पर विद्यमान हैं; उनकी उपस्थिति यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि एक दिन आयेगा जब अंधकार प्रकाश में रूपान्तरित होगा और तेरा शासन धरती पर अवश्य ही स्थापित हो जायेगा।

हे प्रभु, इस चमत्कार के दिव्य निर्माता! जब मैं यह सोचती हूँ तो मेरा हृदय प्रसन्नता एवं कृतज्ञता से परिपूर्ण हो उठता है और मेरी आशा असीम हो उठती है। शब्दातीत है मेरी श्रद्धा, निःशब्द है मेरा आदर।"

भारत की इस यात्रा से पूर्व मीरा की चिन्तनधारा निरन्तर ऊर्ध्वमुखी रही थी लेकिन श्री अरविन्द से भेंट के बाद उन्हें जो अनुभव हुआ वह 3 अप्रैल की प्रार्थना में अभिव्यक्त हैं- "मुझे लग रहा है कि मैं एक नये जीवन में जन्म ले रही हूँ और भूतकाल की पद्धतियों का, आदतों का अब कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे प्रतीत हो रहा है कि जिन बातों को मैं परिणाम-रूप मानती थी, वे मात्र तैयारी के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। मैं अनुभव कर रही हूँ कि मानो मैंने अब तक कुछ नहीं किया, मानो मैंने आध्यात्मिक जीवन नहीं जिया, केवल उस पथ पर पाँव रखा है जो उधर ले जाता है। मुझे लग रहा है कि मैं कुछ नहीं जानती, कि मैं कुछ प्रतिपादित करने में असमर्थ हूँ, कि अभी सारे अनुभव प्रारम्भ होने हैं।

मैं महसूस कर रही हूँ कि यदि मैं इस स्थिति का विरोध किये बिना समर्पण करना सीख लूँ, यदि मैं जानने-समझने का प्रयास ना करूँ, यदि मैं पूर्णरूपेण एक अनभिज्ञ और निष्कपट बालक की तरह हो जाना स्वीकार कर लूँ तो मेरे सामने कोई नवीन संभावना खुल जायेगी। मैं समझती हूँ कि मझे अब निश्चित रूप से समर्पण कर देना चाहिये और नितान्त कोरे कागज की तरह हो जाना चाहिये जिस पर हे प्रभु! तेरा विचार, तेरा संकल्प किसी विकृति के बिना मुक्त रूप से अंकित किया जा सके। मेरे हृदय से एक अपरिमित कृतज्ञता उठ रही है, मुझे लगता है कि मैं अन्ततोगत्वा उस दहलीज पर पहुँच गई हूँ जिसकी मुझे इतनी अधिक तलाश थी।"

7 अप्रैल की प्रार्थना में यह आत्मबोध और स्पष्ट है – "मैंने अब तक जो कुछ भी किया है, वह मुझे नगण्य प्रतीत हो रहा है। हे प्रभु, मैं तेरी सेवा में जो यंत्र प्रस्तुत कर रही हूँ, उसकी अपूर्णता और सीमाएँ मेरे समक्ष सुस्पष्ट हैं।"

श्री अरविन्द के साथ अपनी प्रथम भेंट के सन्दर्भ में श्री माँ ने उन दो जिज्ञासाओं की चर्चा की है जो उन्होंने श्री अरविन्द के सामने प्रस्तुत की थीं। एक जिज्ञासा समाधि के बारे में थी।

श्रीमाँ ने पूछा था कि व्यक्ति ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है कि वह उसे आनन्दमय तो लगती है लेकिन याद नहीं रहती- वह आत्मविस्मृति, वह समाधि क्या है? जब वह उस स्थिति से बाहर आता है तो समझ नहीं पाता कि क्या हुआ था। श्री अरविन्द का उत्तर था कि यह तो अचेतनता है। श्रीमाँ ने इसकी व्याख्या के लिये आग्रह किया तो श्री अरविन्द ने समझाया कि जिस स्थिति को समाधि कहा जाता है, उसमें व्यक्ति अपनी चेतन सत्ता से बाहर चला जाता है और सत्ता के उस भाग में पहुँच जाता है जो पूर्णतया अचेतन है, अजाग्रत है। बेसुधी की स्थिति से लौटने पर कुछ स्मरण नहीं रहता कि क्या हुआ था। श्रीमाँ को इस उत्तर से बहुत आश्वस्ति मिली। उन्होंने कहा कि मेरे साथ ऐसा कभी नहीं हुआ। श्री अरविन्द बोले- 'मेरे साथ भी नहीं'।

श्रीमाँ का दूसरा प्रश्न था कि क्या व्यक्ति को पहले योग-साधना से अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहिये और बाद में दूसरों के साथ कार्य को बढ़ाना चाहिये? अथवा क्या उसे तुरन्त ही एक जैसी अभीप्सा वाले जिज्ञासुओं को एकत्र कर सबके साथ लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिये? यह प्रश्न इसलिये कि दो संभावनाएँ हैं – एक तो यह कि व्यक्ति गहरी वैयक्तिक साधना करे और स्वयं को दुनिया से पीछे हटा ले, दूसरों के साथ कोई सम्बन्ध ना रखे। दूसरी संभावना यह कि सहज रूप से एक समूह का निर्माण होने दे और सब एक साथ मिलकर पथ पर अग्रसर हों। आश्रम का निर्माण कोई मानसिक योजना बनाकर नहीं हुआ, स्वतः हुआ। सर्वांगीण रूपान्तर के लिये समूह का सहज विकास आवश्यक है। प्रथम भारत-यात्रा और श्री अरविन्द से प्रथम भेंट का क्या महत्व है, यह के0 डी0 सेठना के इस निष्कर्ष से स्पष्ट हो जाता है – "दोनों की भेंट उन दो सर्जनात्मक शक्तियों के एक साथ आने की प्रतीक है जिनके द्वारा नूतन युग जन्म लेगा और यह ज्ञातव्य है कि श्री अरविन्द और श्रीमाँ – दोनों ही उन तत्वतः एक समान मार्गों पर आंतरिक जीवन की ओर बढ़ रहे थे जो आत्मा और भौतिक तत्व को जोड़ते हैं। इसलिये उनके द्वारा शक्तियों को संयुक्त करना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी और यह केवल शक्तियों को दुगुना करने की बात नहीं थी बल्कि यह था पूरकताओं को जोड़ना।

श्री अरविन्द के चेतना के मुख्य आन्दोलन को मन के ऊपर की असीम ज्ञान-शक्ति कहा जा सकता है, यद्यपि सर्वांगीण आध्यात्मिक के लिये जो कुछ आवश्यक था, वह भी किसी ना किसी रूप में इसमें विद्यमान था। श्रीमाँ का मुख्य आन्दोलन हृदय के पीछे की तीव्र प्रेम-शक्ति का कहा जा सकता है लेकिन इसमें एक तैयार उपकरण के रूप में सर्वतोमुखी योग के लिये

अपेक्षित सब कुछ उपस्थित था। जब श्रीमाँ और श्री अरविन्द की भेंट हुई तो उन्होंने एक दूसरे को पूर्णता प्रदान की, दोनों ने उन आध्यात्मिक शक्तियों की क्रीड़ा पूर्णरूप से प्रारंभ की जो उनमें विद्यमान थी और ऊपर की ऊँचाई एवं भीतर की गहराई से पूर्ण पार्थिव रूपान्तर का कार्य शुरू किया।

श्री अरविन्द एवं श्रीमाँ की प्रथम भेंट की शतवार्षिकी के अवसर पर उनके अद्वितीय एवं अभूतपूर्व कार्य के प्रति विनम्र समर्पण तथा सत्यनिष्ठा के साथ आगे बढ़ने का संकल्प हमें अग्रसर करे, यह अभीप्सा ही हमारा संबल है।

❧

श्री अरविन्द धरती पर पुराने मतों अथवा पुरानी शिक्षाओं के साथ प्रतियोगिता करने के लिये कोई शिक्षा या मत लाने के नहीं आये हैं। वे अतीत को पार करने का तरीका दिखाने और सन्निकट और अनिवार्य भविष्य के लिये मूर्त रूप में मार्ग बनाने आये हैं। .... श्री अरविन्द अतीत के नहीं हैं और ना इतिहास के ही हैं। श्री अरविन्द चरितार्थ होने के लिये आगे बढ़ता हुआ भविष्य हैं।

श्रीमाँ

24 अप्रैल, 2019

पुस्तक वितरण

प्रिय दीदी,

नमस्कार,

आपको बताते हुये प्रसन्नता हो रही है कि आपके द्वारा दी गयीं पुस्तकें हमने अपने स्कूल में वितरित कर दी हैं। पुस्तकें पहली से आठवीं कक्षा के 17 छात्रों को वितरित की गयीं। हम आपका हृदय से धन्यवाद करते हैं और भविष्य में भी इसी प्रकार सहायता की आशा करते हैं।

भवदीय,

रंजना

वुडलैंड सी0 से0 स्कूल

हलद्वानी

हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता

आश्रम कार्यक्रम-24 अप्रैल 2019

24 अप्रैल को श्रीमाँ सदा के लिये पांडिचेरी आ गयीं थीं, इसलिए प्रत्येक वर्ष यह दिन बड़े उत्साह से मनाया जाता है। प्रातः 06:30 बजे ध्यान कक्ष में श्रीला बासु द्वारा मंगलाचरण और श्रमदान के साथ इस 99वें वार्षिक दिवस के उत्सव का आरम्भ हुआ। श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा में इस दिन समाधि को फूलों से सजाया गया। सांय 6:30 को समाधि उद्यान में मार्च पास्ट के साथ ही अभीप्साओं की ज्योति प्रज्जवलित की गयी। श्री अरविंद समाधि पर सभी लोगों ने दिये जलाकर समाधि को सजाया और फिर ध्यान कक्ष में सभी ने भजन संध्या का आनन्द लिया। तारा दीदी द्वारा सावित्री पाठ और अन्त में प्रसाद के साथ वार्षिकोत्सव समाप्त हुआ।

आश्रम की कुछ अन्य गतिविधियाँ